

LIVE THE MESSAGE

FREE DIGITAL EDITION

Digital distribution credit

Lead Author: Dr H

TEAM ACCD

livethemessage.life

This digital edition is provided free of charge. You may read, download, copy, print, and share the complete, unmodified file. Quotation is welcome with clear attribution to Lead Author Dr H and TEAM ACCD. Do not alter the text, remove credit, create a modified edition, or reproduce it commercially without written permission. The original book interior that follows is preserved as supplied.

Live the message. Words are easy.

जीवन —
एक प्रबुद्ध पथ

जीवन — एक प्रबुद्ध पथ

जीवन, सीख, संस्कृति
और हमारे व्यक्तित्व को आकार
देने वाले
निर्णयों पर चिंतन

तेजस गिल्बर्ट

प्रथम निजी संस्करण, 2026

निजी वितरण हेतु मुद्रित।

समर्पण

मेरे माता-पिता को —

जिनकी शांत शक्ति, स्थिर मार्गदर्शन
और प्रतिदिन का उदाहरण

ने मुझे केवल जीना ही नहीं सिखाया,
बल्कि प्रश्न करना, सीखना, चिंतन करना
और निरंतर आगे बढ़ते रहना सिखाया।

विषय-सूची

भूमिका — इस किताब के साथ कैसे चलें	7
1. आबादी और सभ्यता	28
2. जीवन के तीन रास्ते — त्रिपाई	73
3. अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिए	87
4. बेल कर्व — अपनी ज़िंदगी अपवादों पर मत बनाइए	117
5. अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिए	141
6. छोटी बात, बड़ा असर	152
7. गुण और क्षमताएँ	177
8. तथ्यों पर भरोसा, अनजान का सामना	195
9. प्यार, परवाह और बिछड़ना	216
10. सीखा तो क्या सीखा? — औज़ार और उनका इस्तेमाल	221
11. सीखा तो क्या सीखा? — सफ़र और संस्कृति	229
12. सीखा तो क्या सीखा? — कानून और उनका पालन	237
13. स्वास्थ्य, संतुलन और दीर्घायु	247
14. असाधारण भी साधारण बन जाता है	306
15. स्कूल से पहले चरित्र	346

भूमिका — इस किताब के साथ कैसे चलें

यह किताब एक **बातचीत** है।

यह किसी एक विषय पर लिखी गई किताब नहीं है। न ही इसका उद्देश्य आपको यह बताना है कि क्या सही है, क्या गलत है, या आपको क्या मानना चाहिए। विश्वास व्यक्तिगत होता है।

हमारी कोशिश उससे पहले की है:

**फ़ैसला करने से पहले समझने की
कोशिश करें।**

इस किताब को एक खुली बैठक
समझिए—एक ऐसी महफ़िल जहाँ हर
किसी को सवाल पूछने, अपना अनुभव
रखने और किसी बात को अपने नज़रिए
से देखने की जगह मिले।

हम सहमत हो सकते हैं।

असहमत हो सकते हैं।

एक-दूसरे से सवाल कर सकते हैं।

और कभी-कभी बातचीत के बीच हमें
यह भी पता चल सकता है कि जिस

सवाल से हमने शुरुआत की थी, शायद असली सवाल वह था ही नहीं।

हम जवाब लेकर बातचीत शुरू नहीं करते।

हर दौर में बहसें रही हैं। कोई बात सदियों से चली आ रही है, इसलिए वह अपने-आप सही नहीं हो जाती। और कोई बात नई है, इसलिए वह अपने-आप बेहतर भी नहीं हो जाती।

इसलिए इस किताब में एक छोटा-सा सवाल बार-बार लौटकर आएगा:

“क्यों?”

हम ऐसा क्यों सोचते हैं?
हम ऐसा क्यों करते हैं?
हमें वास्तव में क्या मालूम है?
हमें क्या लगता है कि हमें मालूम है?
और ऐसा क्या है जो अभी भी हमें मालूम
नहीं?

इसीलिए हमारी बातचीत एक क्रम से
आगे बढ़ेगी:

सवाल → सुनना → समझना →
परखना → प्रमाण → संदर्भ →
परिणामों पर विचार → साझा आधार
→ कार्य → नतीजा → चिंतन → फिर
सीखना

हम निष्कर्ष से नहीं, सवाल से शुरू करते हैं।

जवाब देने से पहले सुनते हैं। अलग-अलग विचार कहाँ से आते हैं, यह समझने की कोशिश करते हैं। जहाँ संभव हो, प्रमाण देखते हैं। संदर्भ समझते हैं। संभावित परिणामों पर विचार करते हैं। और जहाँ जवाब साफ़ नहीं है, वहाँ यह कहने में कोई हर्ज नहीं कि—

हमें अभी नहीं मालूम।

फिर हम तलाशते हैं **साझा आधार —**
Common Ground की।

साझा आधार का मतलब यह नहीं कि सबको एक ही बात माननी पड़ेगी।

एक ही गिलास को देखकर कोई कह सकता है, “आधा भरा है।” दूसरा कह सकता है, “आधा खाली है।”

नज़रिया अलग है।

लेकिन दोनों इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि गिलास में पानी कितना है।

**जो हम साथ मिलकर देख सकते हैं
और जो अर्थ हम उसे देते हैं—दोनों
हमेशा एक ही चीज़ नहीं होते।**

इस किताब में विज्ञान आएगा, संस्कृति आएगी, परंपरा आएगी, तकनीक

आएगी, शिक्षा, परिवार, जीवविज्ञान,
इंसानी व्यवहार और रोज़मर्रा की ज़िंदगी
भी आएगी।

लेकिन हमारा तरीका किसी विषय को
पहले से अच्छा या बुरा घोषित नहीं
करेगा।

हम पूछेंगे:

इसका इस्तेमाल कैसे हो रहा है?

किस परिस्थिति में हो रहा है?

इसके परिणाम क्या हैं?

और हमारे पास इसे समझने के लिए

क्या प्रमाण हैं?

लेकिन केवल समझ लेना काफी नहीं है।

**समझ को आखिरकार कर्म तक
पहुँचना चाहिए।**

बातें करना आसान है। किसी सिद्धांत
को जीवन में उतारना और फिर उसका
परिणाम देखना असली परीक्षा है।

उसे आजमाइए।

अगर काम करता है, पूछिए—क्यों?

अगर काम नहीं करता, तब भी पूछिए—
क्यों?

नतीजा बातचीत का अंत नहीं है। वह
अगली बातचीत के लिए नई जानकारी
है।

जब कोई विचार सवालों, बहस, प्रमाण,
अनुभव और चिंतन से गुजरकर इतना
साफ़ हो जाए कि हमें उसमें कोई
उपयोगी **साझा आधार** और जीवन में
अपनाने योग्य सिद्धांत दिखाई दे, तब वह
हमारी **Velcro Wall** तक पहुँचता है।

Velcro Wall कोई धर्मग्रंथ नहीं है।

वहाँ लिखी बातें कोई आदेश या
अपरिवर्तनीय सत्य नहीं हैं। वे हमारी
बातचीत से छनकर निकले ऐसे विचार हैं
जिन्हें अपने साथ ले जाना, जीवन में
आज़माना और अनुभव की कसौटी पर
परखना सार्थक हो सकता है।

उन्हें अपनाइए।

नतीजे देखिए।

और अगर जीवन हमें कुछ नया सिखाए,
तो वापस आइए और बातचीत फिर शुरू
कीजिए।

एक अलग छोटी साथी-पुस्तिका में सभी
Velcro Walls को एक जगह रखा
जाएगा, ताकि इन विचारों तक दोबारा
पहुँचने के लिए पूरी किताब फिर से
पढ़ना आवश्यक न हो।

हमारी इस बैठक में कुछ अलग-अलग
आवाज़ें भी हैं।

Dr. Author अनुभव, सवाल,
observations और कभी-कभी बहस
छेड़ देने वाले विचार सामने रखते हैं।

Mr. Collaborator उन विचारों को
जोड़कर बातचीत को एक दिशा देने की
कोशिश करते हैं।

Mr. Caution तब हाथ उठाते हैं जब
हमारा निष्कर्ष हमारे प्रमाण से आगे
निकलने लगता है।

और **Mr. Dot** बिखरे हुए बिंदुओं को
जोड़ते हैं—यह देखने के लिए कि इन
सबके बीच कौन-सा साझा आधार

निकलता है जो आखिरकार Velcro
Wall तक पहुँचने लायक है।

सिर्फ़ बोल देने से किसी को आखिरी
शब्द नहीं मिल जाता।

**निष्कर्ष को अपनी जगह कमानी पड़ती
है।**

और Velcro Wall तक पहुँचने के बाद
भी बातचीत बंद नहीं होती।

क्योंकि बातचीत तब ज्ञान बनती है जब
हम उसे छानकर उसका सार निकालते
हैं।

वह ज्ञान तब उपयोगी बनता है जब हम
उसे जीवन में उतारते हैं।

जब हम उसे जीते हैं, वह अनुभव बनता है।

और जब वह अनुभव बाँटा जाता है, तो वही किसी और की शुरुआत बन सकता है।

इसलिए इस किताब को किसी उपदेश की तरह मत पढ़िए।

इसे एक अच्छी खुली बैठक की तरह पढ़िए—जिज्ञासा के साथ, धैर्य के साथ, सवाल पूछने की आज़ादी के साथ और अपने दिमाग का पूरा इस्तेमाल करते हुए।

आपको हमारी बात **मानने** की ज़रूरत नहीं है।

पहले यह समझिए कि हम क्या कह रहे हैं। फिर उसे परखिए। जो उपयोगी लगे उसे जीवन में आजमाइए। नतीजे देखिए। ज़रूरत पड़े तो हमसे सवाल कीजिए। और सीखने के लिए हमेशा खुले रहिए।

क्योंकि हर परिस्थिति हमें कुछ न कुछ सिखाकर जा सकती है।

विचारों की उत्पत्ति, श्रेय और Team ACCD

इस किताब में पारदर्शिता कोई ऐसी सफ़ाई नहीं है जिसे बाद में ज़रूरत पड़ने पर जोड़ दिया जाए। यह शुरुआत से ही हमारे काम करने के तरीके का हिस्सा है।

कोई विचार Author के अनुभव, सवाल या observation से शुरू हो सकता है। फिर Collaborator उसे आकार देता है, Caution उस पर सवाल उठाता है, और Dot उसे दूसरी बातों से जोड़कर यह देखने की कोशिश करता है कि उसके

भीतर कोई बड़ा सिद्धांत छिपा है या नहीं।

कभी शुरुआती विचार लगभग वैसा ही बचा रहता है।

कभी बातचीत उसे पूरी तरह बदल देती है।

यही सीखने की प्रक्रिया है।

लेकिन केवल किसी विचार पर चर्चा कर लेने से वह विचार हमारा नहीं हो जाता। अगर कोई विशिष्ट विचार, कथन, खोज, तर्क या जानकारी किसी पहचाने जा सकने वाले स्रोत से आई है, तो उसका श्रेय उसी स्रोत को मिलना चाहिए।

जहाँ बात सामान्य ज्ञान या स्थापित तथ्य की है, उसे उसी रूप में देखा जाएगा। और जहाँ किसी तथ्य को जाँचने की आवश्यकता है, वहाँ पहले उसे जाँचना हमारी ज़िम्मेदारी है।

हमारी अपनी बातचीत से निकलने वाले विचार इस रास्ते से गुजरते हैं:

मूल बातचीत → विचार का विकास → सवाल और चुनौती → जहाँ ज़रूरी हो जाँच → जहाँ ज़रूरी हो श्रेय → विचार का सार → Author की स्वीकृति → Velcro Wall

हमारी बातचीत में छोटे-छोटे बदलावों ने कई बार पूरे विचार को बदल दिया।

“Believe” की जगह आया

“Understand — समझना।”

“Wrong” की जगह आया “Debate
— बहस।”

और “Universal Truth” की जगह
आया “Common Ground — साझा
आधार।”

ये केवल शब्द बदलना नहीं था।

हर बदलाव ने विचार को थोड़ा अधिक
स्पष्ट, सटीक और ईमानदार बनाया।

यही Team ACCD का काम है।

Author विचार और दिशा देता है।

Collaborator विचार को विकसित और व्यवस्थित करता है।

Caution दावों और सीमाओं पर सवाल उठाता है।

Dot अलग-अलग बिंदुओं को जोड़ता है।

Artificial Intelligence इस प्रक्रिया का हिस्सा है और हम इस बात को छिपाते नहीं हैं। लेकिन केवल इसलिए कि AI किसी बात को बहुत अच्छे शब्दों में लिख सकता है, वह बात अपने-आप सही नहीं हो जाती।

अंतिम निर्णय और अंतिम ज़िम्मेदारी
Author की रहती है।

इसलिए हमारे लिए असली सवाल
केवल यह नहीं है:

“यह वाक्य किसने लिखा?”

असली सवाल हैं:

विचार आया कहाँ से?

**जहाँ किसी और को श्रेय मिलना चाहिए
था, क्या हमने दिया?**

**जो दावा किया जा रहा है, क्या उसे
समर्थन मिलता है?**

और आखिर में लिखी गई बात क्या

सचमुच वही कहती है जो हम कहना चाहते हैं?

हम पूर्णता का दावा नहीं करते।

**हमारा प्रयास है कि इस पूरी यात्रा में
पारदर्शिता, उचित श्रेय, बौद्धिक
ईमानदारी और ज़िम्मेदारी बनी रहे।**

CHAPTER ONE

अध्याय 1

आबादी और सभ्यता

दुनिया के कुछ हिस्सों में इतनी बड़ी
आबादी क्यों है?

इस सवाल के आम जवाब हमें जल्दी मिल
जाते हैं—उपजाऊ ज़मीन, नदियाँ, खेती,
मौसम, बेहतर सफ़ाई, आधुनिक चिकित्सा
और घटती मृत्यु-दर।

ये सभी कारण महत्वपूर्ण हैं।

लेकिन लोगों को गिनने से पहले शायद हमें
एक और सवाल पूछना चाहिए:

लोग वहाँ जाना क्यों चाहते थे?

आज के नक्शे को थोड़ी देर के लिए भूल
जाइए और इतिहास में पीछे चलिए।

हज़ारों साल पहले मिस्र दुनिया की महान
सभ्यताओं में से एक था। नील नदी ने
इसमें बहुत बड़ी भूमिका निभाई। पानी और
उपजाऊ मिट्टी ने खेती को जन्म दिया।
खेती ने बस्तियों को सम्भव बनाया।
बस्तियाँ बढ़ीं तो नगर बने और फिर
संगठित राज्य।

लेकिन केवल नदी पूरी कहानी नहीं
बताती।

एक सफल सभ्यता लोगों को अपनी ओर
खींचती है।

व्यापारी बाज़ार की तलाश में आते हैं।
कारीगर काम की तलाश में आते हैं।
विद्वान ज्ञान की तलाश में आते हैं।
शासक धन और सत्ता की तलाश में आते
हैं।

और सामान्य लोग बेहतर जीवन की
तलाश में आते हैं।

कुछ लोग शांति से आते हैं।

कुछ विजेता बनकर आते हैं।

कुछ थोड़े समय के लिए रुकते हैं।

कुछ वहीं बस जाते हैं, विवाह करते हैं और
कुछ पीढ़ियों बाद उसी समाज का हिस्सा

बन जाते हैं जिसमें कभी वे बाहरी व्यक्ति थे।

सदियाँ बीतने के बाद यह तय करना कठिन हो जाता है कि कौन पहले से वहाँ था और कौन बाद में आया।

पहचान की कई परतें

उत्तरी अफ्रीका को देखिए।

मिस्र अफ्रीका में है, लेकिन उसका इतिहास भूमध्यसागरीय और अरब दुनिया से भी गहराई से जुड़ा हुआ है।

मोरक्को की जड़ें अफ्रीकी और अमाज़ीग इतिहास में हैं, लेकिन अरब भाषा और

संस्कृति ने भी उसे गहराई से प्रभावित
किया।

सूडान एक और अद्भुत संगम है—नील
घाटी, नूबिया, साहेल, अफ्रीका और अरब
दुनिया का।

इंसानों को हमेशा एक छोटे से खाने में
रखकर पहचान देना आसान नहीं होता।

भारत को देखिए।

कभी हमारी कहानी बहुत सरल ढंग से
सुनाई जाती थी—दक्षिण के पुराने
निवासी, उत्तर से आए आर्य, और फिर
अलग-अलग आक्रमणकारी।

वास्तविक इतिहास इससे कहीं अधिक
जटिल है।

हज़ारों वर्षों में लोग आते रहे, जाते रहे,
व्यापार करते रहे, लड़ते रहे, बसते रहे और
एक-दूसरे से विवाह करते रहे।

यह सुधार हमारे विचार को कमज़ोर नहीं
करता।

बल्कि उसे और मजबूत करता है।

महान सभ्यताएँ अक्सर शुद्ध और बंद
आबादियाँ नहीं होतीं। वे चौराहे होती हैं।

यात्रियों के पीछे चलिए

कभी-कभी किसी सभ्यता की अहमियत समझने का सबसे अच्छा तरीका वहाँ रहने वाले लोगों को देखना नहीं होता।

उन लोगों को देखिए जो वहाँ पहुँचने की कोशिश कर रहे थे।

वास्को द गामा कहाँ जाना चाहता था?

भारत।

क्यों?

वह गंगा देखने के लिए दुनिया का चक्कर नहीं लगा रहा था।

भारत और एशिया के व्यापार, मसाले, कपड़े और दूसरे मूल्यवान सामान यूरोप के लिए बहुत महत्वपूर्ण थे। यूरोपीय

शक्तियाँ उन बाज़ारों तक सीधी पहुँच
चाहती थीं।

अब क्रिस्टोफर कोलंबस को देखिए।

वह पश्चिम की ओर जहाज़ लेकर कहाँ
पहुँचना चाहता था?

एशिया की ओर।

उसे लगा कि पश्चिम से समुद्री रास्ता
खोजकर पूर्व के समृद्ध व्यापारिक संसार
तक पहुँचा जा सकता है।

वह कैरिबियन पहुँच गया।

उसकी मंज़िल गलत निकली, लेकिन
उसकी **मंशा** हमें बहुत कुछ बताती है।

इंसान बिना कारण समुद्र पार नहीं करता।

लोग उन जगहों तक पहुँचने के लिए बड़ा
जोखिम उठाते हैं जिन्हें वे मूल्यवान समझते
हैं।

सिकंदर महान के पूर्व की ओर बढ़ने को
देखिए।

फारस को देखिए।

अनातोलिया और आज के तुर्की को देखिए
—दो महाद्वीपों के बीच का ऐसा क्षेत्र जिसे
सदियों तक अलग-अलग साम्राज्यों और
लोगों ने पार किया, जीता और अपना घर
बनाया।

चीन की महान दीवार को देखिए।

दीवार केवल यह नहीं बताती कि उसके
अंदर कौन था।

वह यह भी बताती है कि बाहर कौन था
और सीमाओं पर क्या हो रहा था।

फिर समुद्र पार करके एज़टेक सभ्यता को
देखिए—उसकी संपन्नता, संगठन और वह
आकर्षण जिसने स्पेनिश विजेताओं का
ध्यान खींचा।

बार-बार वही बात दिखाई देती है।

समृद्ध सभ्यताएँ व्यापार, प्रवास और
विजय का लक्ष्य बनती हैं।

सभ्यता एक चुंबक की तरह

शायद हम आबादी को केवल एक दिशा से देखते आए हैं।

हम सोचते हैं:

ज़्यादा लोग → बड़ी सभ्यता

लेकिन इतिहास दूसरी दिशा भी दिखाता है:

सफल सभ्यता → आकर्षण → लोगों का आना → बड़ी और अधिक विविध आबादी

दोनों प्रक्रियाएँ साथ चल सकती हैं।

खेती महत्वपूर्ण है।

पानी महत्वपूर्ण है।

बीमारी महत्वपूर्ण है।

जन्म-दर और मृत्यु-दर महत्वपूर्ण हैं।

तकनीक, सरकार, युद्ध और आधुनिक
चिकित्सा महत्वपूर्ण हैं।

**लेकिन लोगों का आना-जाना भी
महत्वपूर्ण है।**

और हर प्रवास स्वेच्छा से नहीं हुआ।

लोग व्यापार के लिए चले।

काम के लिए चले।

विवाह के कारण चले।

युद्ध के कारण भागे।

कुछ लोगों को गुलाम बनाकर जबरन ले
जाया गया।

कुछ विजेता बनकर आए।

कुछ उत्पीड़न से बचने के लिए आए।

कुछ केवल बेहतर अवसर खोज रहे थे।

हर यात्रा की कहानी अलग थी।

लेकिन लगभग हर बड़ी यात्रा अपने पीछे
निशान छोड़ गई।

भाषा।

खाना।

कपड़े।

धर्म।

वास्तुकला।

तकनीक।

रीति-रिवाज़।

और सबसे महत्वपूर्ण—अगली पीढ़ियाँ।

आज की प्रयोगशाला

इस विचार को समझने के लिए हमें केवल प्राचीन इतिहास में रहने की आवश्यकता नहीं है।

आज अमेरिका और कनाडा को देखिए।

दुनिया के किसी युवा से पूछिए कि वह उत्तरी अमेरिका क्यों जाना चाहता है।

नायग्रा फॉल्स देखने के लिए?

मिसिसिपी नदी देखने के लिए?

शायद नहीं।

अक्सर उत्तर होता है—

शिक्षा।

नौकरी।

बेहतर वेतन।

व्यापार।

तकनीक।

सुरक्षा।

आगे बढ़ने का मौका।

या बस यह उम्मीद कि कल आज से बेहतर हो सकता है।

कनाडा स्वयं दुनिया के सबसे बड़े प्रवासी समाजों में से एक है।

लेकिन अमेरिका एक विशेष उदाहरण दिखाता है कि जब कोई अर्थव्यवस्था पीढ़ी-दर-पीढ़ी दुनिया भर के लोगों को आकर्षित करती है तो क्या होता है।

न्यूयॉर्क, लॉस एंजिलिस, शिकागो या ह्यूस्टन की सड़क पर खड़े होकर केवल लोगों को देखिए।

विविधता स्वयं इतिहास सुना देती है।

यूरोप से लोग आए।

अफ्रीका से लाखों लोगों को गुलामी की
अमानवीय व्यवस्था के तहत जबरन लाया
गया।

फिर लैटिन अमेरिका, एशिया, कैरिबियन,
अफ्रीका, मध्य पूर्व और दुनिया के लगभग
हर कोने से लोग आए।

अलग कारण।

अलग परिस्थितियाँ।

अलग सदियाँ।

लेकिन धीरे-धीरे एक देश में दुनिया के
अनेक हिस्सों के लोग बस गए।

क्यों?

नदियाँ देखने के लिए नहीं।

अवसर लोगों को खींचता है।

धन और आबादी

हम अक्सर मानते हैं कि बड़ी आबादी धन पैदा करती है।

ऐसा हो सकता है।

ज़्यादा लोग मतलब ज़्यादा कामगार,
ज़्यादा ग्राहक, ज़्यादा विशेषज्ञता और
ज़्यादा विचार।

लेकिन तीर दूसरी दिशा में भी चलता है।

समृद्धि आबादी को आकर्षित कर सकती
है।

जहाँ अवसर पैदा होते हैं, लोग वहाँ पहुँचते हैं।

वे काम करते हैं।

नए व्यवसाय बनाते हैं।

नए विचार लाते हैं।

अर्थव्यवस्था और बढ़ सकती है।

और वह बढ़ती अर्थव्यवस्था नए लोगों को आकर्षित करती है।

एक चक्र शुरू हो सकता है:

**अवसर → प्रवास → श्रम → नए विचार
→ विकास → अधिक अवसर → और
प्रवास**

लेकिन हमेशा नहीं।

यही सावधानी आवश्यक है।

भूगोल सीमा लगा सकता है।

बीमारी आबादी मिटा सकती है।

युद्ध शहर खाली कर सकता है।

सरकारें सीमाएँ बंद कर सकती हैं।

संसाधन समाप्त हो सकते हैं।

समृद्ध समाजों में जन्म-दर गिर सकती है।

ईस्टर आइलैंड हमें एक अलग प्रयोग
दिखाता है—एक ऐसा समाज जो दुनिया
के बड़े व्यापारिक चौराहों से बहुत दूर
विकसित हुआ।

इतिहास कभी एक ही नियम से नहीं
चलता।

दो सवाल

इसलिए जब हम भारत या चीन की
विशाल आबादी देखते हैं, तो केवल प्रवास
से उसका उत्तर नहीं मिल सकता।

अरबों की आबादी को समझने के लिए
खेती, भूमि, स्वास्थ्य, जन्म-दर, मृत्यु-दर
और आधुनिक जनसांख्यिकीय बदलावों
को भी समझना होगा।

एक सरल जवाब को हटाकर दूसरा सरल
जवाब लगा देना समझदारी नहीं होगी।

इसलिए हमें दो अलग सवाल पूछने चाहिए:

इतने सारे लोग वहाँ रह कैसे सके?

और

इतने सारे लोग वहाँ जाना क्यों चाहते थे?

पहला सवाल भूगोल, खेती, तकनीक,
स्वास्थ्य और प्रजनन का है।

दूसरा सवाल सभ्यता का है।

उसकी संपन्नता।

उसके बाज़ार।

उसका ज्ञान।

उसकी शक्ति।

और उसका आकर्षण।

शायद आबादी सभ्यता बनाती है।

और शायद सभ्यता आबादी को अपनी
ओर खींचती है।

इतिहास बताता है कि दोनों एक साथ हो
सकते हैं।

बड़ी सीख

आज के नक्शे को देखकर यह मान लेना
आसान है कि मानवता हमेशा इन्हीं देशों
और सीमाओं में बँटी हुई थी।

ऐसा कभी नहीं था।

सरहदें बदलती हैं।

साम्राज्य मिट जाते हैं।

भाषाएँ फैलती हैं।

धर्म यात्रा करते हैं।

लोग घर बदलते हैं।

विजेता अंततः निवासी बन जाते हैं।

बाहरी लोग स्थानीय लोगों से विवाह करते हैं।

उनके बच्चे दोनों इतिहासों के वारिस होते हैं।

कुछ पीढ़ियों बाद कल का बाहरी व्यक्ति आज का स्थानीय व्यक्ति बन जाता है।

सभ्यता केवल इमारतें, स्मारक, राजा और
सीमाएँ नहीं हैं।

सभ्यता सदियों से जमा होता हुआ
मानवीय संपर्क है।

इसलिए यह समझने का एक सरल तरीका
कि इतिहास में लोग कहाँ इकट्ठा हुए,
शायद यह सवाल पूछना है:

अवसर कहाँ था?

फिर लोगों के पीछे चलिए।

बिंदु अपने-आप जुड़ने लगेंगे।

वेल्ल्रो वॉल

आबादी केवल सफल सभ्यताएँ नहीं
बनाती। सफल सभ्यताएँ भी आबादी को
अपनी ओर खींचती हैं।

जहाँ अवसर इकट्ठे होते हैं, वहाँ अक्सर
लोग भी इकट्ठे होते हैं।

महान सभ्यताएँ बंद डिब्बे नहीं, चौराहे
होती हैं।

केवल यह मत गिनिए कि आज वहाँ
कितने लोग हैं। यह भी पूछिए कि सदियों
से लोग वहाँ जाना क्यों चाहते थे।

और अंत में:

आज की आबादी को समझना है तो कल
चलते हुए लोगों के पदचिह्न देखिए।

दुनिया एक जगह खड़ी नहीं रहती

एक और कारण है कि मैं विदेश जाने का
सपना देखने वाले लोगों से इतनी लंबी
बातचीत करता हूँ।

जिस दुनिया में वे जाना चाहते हैं, वह
उनके माता-पिता के सपनों वाली दुनिया
नहीं रही।

कुछ दशक पहले अमेरिका जैसे विकसित देश और दुनिया के बहुत से विकासशील देशों के बीच अंतर बहुत बड़ा दिखाई देता था।

सड़कें।

शिक्षा।

तकनीक।

संचार।

सामान।

रोज़गार।

जानकारी तक पहुँच।

बहुत से परिवारों के लिए अमेरिका पहुँचना
सचमुच दूसरी दुनिया में कदम रखने जैसा
था।

लेकिन दुनिया वहीं खड़ी नहीं रही।

व्यापार बढ़ा।

हवाई यात्रा सामान्य हुई।

तकनीक दुनिया भर में पहुँची।

अलग-अलग देशों में विश्वविद्यालय बेहतर
हुए।

कंपनियाँ सीमाओं के पार फैल गईं।

और फिर आया एक ऐसा परिवर्तन जिसने
दूरी का अर्थ ही बदल दिया:

इंटरनेट।

जो ज्ञान कभी केवल किसी बड़े
विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में मिलता था,
वही धीरे-धीरे हजारों किलोमीटर दूर बैठे
व्यक्ति की स्क्रीन पर आने लगा।

आप ऐसे प्रोफेसर से सीख सकते थे
जिससे कभी मिले नहीं।

एक छोटा व्यवसाय दूसरे देश में ग्राहक ढूँढ
सकता था।

समुद्रों से अलग परिवार एक-दूसरे को
स्क्रीन पर देख सकते थे।

विचार लगभग तुरंत दुनिया पार करने लगे।

एक अर्थ में दुनिया छोटी और सपाट होने
लगी।

बराबर नहीं।

निश्चित रूप से पूरी तरह न्यायपूर्ण भी
नहीं।

लेकिन पहले से कहीं अधिक जुड़ी हुई।

देशों के बीच कुछ पुराने अंतर कम होने
लगे।

और इससे हमारे फैसले की गणित भी
बदलती है।

सपने का हिसाब दोबारा कीजिए

जो फैसला चालीस या पचास साल पहले स्पष्ट रूप से सही लगता था, वह आज अपने-आप सही नहीं हो जाता।

लेकिन कई बार हम सपना विरासत में ले लेते हैं और उसका हिसाब दोबारा नहीं करते।

परिवार अपनी जमा-पूँजी खर्च कर देता है।
कभी कर्ज़ लेता है।

कभी अपनी आर्थिक सुरक्षा तक दाँव पर लगा देता है।

क्योंकि **विदेश जाना** ही सफलता का दूसरा नाम बन गया है।

कुछ बच्चे अद्भुत सफलता प्राप्त करते हैं।

लेकिन कुछ परिवार बाद में समझते हैं कि वास्तविक समीकरण उस सपने से बहुत अलग था जो उन्होंने बनाया था।

इसलिए बड़े फैसले को छोटे हिस्सों में बाँटिए।

पढ़ाई की वास्तविक लागत कितनी है?

कितना कर्ज लेना पड़ेगा?

उसे चुकाने में कितना समय लगेगा?

डिग्री के बाद वास्तविक कमाई कितनी हो सकती है?

पढ़ाई समाप्त होने के बाद कानूनी रूप से रहने का रास्ता क्या है?

अगर वह रास्ता बंद हो गया तो क्या होगा?

आज अपने देश में कौन से अवसर मौजूद हैं जो बीस साल पहले नहीं थे?

और शायद सबसे कठिन सवाल:

हम आज के अवसर के पीछे जा रहे हैं या कल के सपने के पीछे?

विदेश जाने में कोई बुराई नहीं।

अपने देश में रहने में भी कोई बुराई नहीं।

गलती केवल यह है कि हम यह समझे बिना फैसला करें कि हम किस रास्ते पर कदम रख रहे हैं।

दीवारें गिरती भी हैं—और फिर खड़ी भी हो सकती हैं

एक समय ऐसा लगा कि दुनिया की बहुत
सी दीवारें धीरे-धीरे गिर रही हैं।

व्यापार बढ़ रहा था।

लोग अधिक आसानी से यात्रा कर रहे थे।

जानकारी सीमाएँ पार कर रही थी।

अलग-अलग संस्कृतियाँ एक-दूसरे से मिल
रही थीं।

कई देशों में जनता की भागीदारी और
प्रतिनिधि शासन बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा
था।

ऐसा लग सकता था कि इतिहास केवल
एक दिशा में जा रहा है।

लेकिन इतिहास ऐसा नहीं चलता।

दीवारें गिर सकती हैं।

और फिर खड़ी भी हो सकती हैं।

समाज खुल सकता है और बाद में अधिक
रक्षात्मक हो सकता है।

वैश्वीकरण उत्साह पैदा कर सकता है और
फिर उसी के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी।

एक पीढ़ी जिस व्यवस्था से परेशान होती
है, अगली राजनीतिक लहर अक्सर उसी
के विरुद्ध उठती है।

यहीं से मुझे जीवन का एक और रूप
दिखाई देता है।

पेंडुलम

जीवन अक्सर घड़ी के पेंडुलम जैसा लगता
है।

वह झूलता रहता है।

राजनीति बाएँ और दाएँ झूल सकती है।

समाज खुलेपन और प्रतिबंध के बीच झूल
सकता है।

अर्थव्यवस्था अधिक नियंत्रण और अधिक
स्वतंत्रता के बीच जा सकती है।

संस्कृति परंपरा और तेज़ बदलाव के बीच
घूम सकती है।

कई बार एक छोर की अति ही वह ऊर्जा
पैदा करती है जो समाज को दूसरे छोर की
ओर धकेल देती है।

नाम और राजनीतिक लेबल से अधिक
महत्वपूर्ण यह पैटर्न है।

क्योंकि चरम विचारों की एक खासियत
होती है:

वे बहुत शोर करते हैं।

बीच की आवाज़ अक्सर धीमी होती है।

कमरे के एक कोने से चिल्लाने वाला
व्यक्ति सबका ध्यान खींच लेता है।

लेकिन जो व्यक्ति कहता है, “दोनों तरफ कुछ समझने योग्य हो सकता है,” वह शायद समाचार की सुखी नहीं बनता।

फिर भी समझदारी अक्सर उसी जगह मिलती है।

इसलिए नहीं कि बीच का रास्ता हमेशा सही होता है।

कभी एक पक्ष के पास वास्तव में अधिक मजबूत प्रमाण होते हैं।

कभी बड़े परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

सिर्फ मध्यम दिखाई देने के लिए मध्यम होना भी समझदारी नहीं है।

लक्ष्य कुछ और है:

अपना पक्ष चुनने से पहले समस्या के हिस्सों को समझिए।

क्या काम कर रहा है?

क्या काम नहीं कर रहा?

हम किस समस्या को हल करने निकले थे?

हमारे समाधान ने कौन सी नई समस्या पैदा कर दी?

क्या बचाना चाहिए?

क्या बदलना चाहिए?

और कौन सा नया प्रमाण हमें अपना विचार फिर बदलने पर मजबूर करेगा?

किसी टीम को चुन लेना आसान है।

सोचना उससे कठिन है।

An Illuminated Path

शायद *An Illuminated Path* का अर्थ
यही है।

रोशनी हमारे लिए रास्ता नहीं चुनती।

वह केवल हमें रास्ता देखने देती है।

अवसर।

रुकावटें।

कीमत।

दूसरे विकल्प।

और कभी-कभी मोड़ के पीछे छिपी खाई भी।

चुनना फिर भी हमें ही पड़ता है।

अमेरिका जाना सही फैसला हो सकता है।

अपने देश में रहना सही फैसला हो सकता है।

किसी तीसरे देश में जाना भी सही हो सकता है।

हर इंसान के लिए एक ही उत्तर नहीं हो सकता क्योंकि हर इंसान का जीवन एक जैसा नहीं है।

लेकिन एक तरीका हो सकता है:

जानिए कि आप किस चीज़ में कदम
रखने जा रहे हैं।

जटिल समस्या को उसके हिस्सों में
बाँटिए।

हर हिस्से को समझिए।

बिंदुओं को फिर जोड़िए।

और फिर आँखें और कान खुले रखकर
फैसला कीजिए।

दुनिया बदलती रहेगी।

पेंडुलम झूलता रहेगा।

हम दोनों को नियंत्रित नहीं कर सकते।

लेकिन शायद हम यह सीख सकते हैं कि
हर बार उसके साथ आँख बंद करके एक
छोर से दूसरे छोर तक न झूलें।

और शायद उन्हीं दो छोरों के बीच कहीं,
ध्यान से देखने पर, हमें अपना रोशन रास्ता
मिल जाए।

Velcro Wall

कल के सपने को आज की दुनिया का
हिसाब लगाए बिना विरासत में मत
लीजिए।

दुनिया बदलती है। अच्छे फैसलों को भी
उसके साथ बदलना पड़ता है।

चरम विचार सबसे अधिक शोर करते हैं।
समझदारी को चिल्लाने की आवश्यकता
नहीं।

बीच का रास्ता हमेशा सही नहीं होता;
लेकिन वहाँ खड़े होकर दोनों दिशाओं को
देखा जा सकता है।

जटिलता को हिस्सों में बाँटिए। हिस्सों
को समझिए। फिर बिंदुओं को जोड़िए।

जानिए कि आप किस चीज़ में कदम
रखने जा रहे हैं।

और अंत में:

रोशनी आपके लिए रास्ता नहीं चुनती।
वह आपको चुनने से पहले रास्ता देखने
देती है।

CHAPTER 2

जीवन के तीन रास्ते
त्रिपाई

एक साधारण त्रिपाई की कल्पना कीजिए।

तीन पैर मिलकर ऊपर के पूरे ढाँचे को
संभालते हैं।

एक पैर हटा दीजिए। शायद वह कुछ देर
खड़ी दिखाई दे, लेकिन उसकी स्थिरता जा
चुकी है। थोड़ा और भार डालिए और देर-
सवेर वह झुकने लगेगी।

ज़िंदगी भी कुछ ऐसी ही हो सकती है।

इस बातचीत के लिए हम जीवन को तीन
बड़े हिस्सों से देखेंगे:

घर।

काम।

**आस्था, विश्वास या वह आधार जो हमें
भीतर से स्थिर रखता है।**

ये कोई कठोर खाने नहीं हैं जिनमें हर
इंसान की ज़िंदगी को फिट होना चाहिए।
इंसानी जीवन उसके लिए बहुत जटिल है।

ये केवल तीन जगह हैं जहाँ से हम खुद को
देखना शुरू कर सकते हैं।

घर

घर केवल वह जगह नहीं जहाँ हम रहते हैं।

घर में परिवार है, रिश्ते हैं, अपनापन है,
ज़िम्मेदारी है, सुरक्षा है, टकराव है, माफ़ी
है, उम्मीदें हैं और वे लोग हैं जिनके सामने
हमारा निजी जीवन खुलता है।

दुनिया को समझने की हमारी शुरुआती
शिक्षा भी अक्सर यहीं शुरू होती है।

समाज, मनोविज्ञान, धर्म, अर्थशास्त्र या
दर्शन समझने से बहुत पहले बच्चा अपने
आसपास की दुनिया को देख रहा होता है।

वह देखता है।

नकल करता है।

प्रतिक्रिया देता है।

याद रखता है।

कुछ बातें हमें जान-बूझकर सिखाई जाती
हैं।

और कुछ बिना किसी के यह महसूस किए
हमारे भीतर उतर जाती हैं कि कोई शिक्षा
दी भी जा रही है।

काम

काम का अर्थ केवल नौकरी भी नहीं है।

बच्चे के लिए काम पढ़ाई हो सकती है।

माता-पिता के लिए रोज़गार के साथ घर
संभालना भी काम है।

किसी के लिए व्यवसाय, खेती, पेशा,
कला, पढ़ाई, सेवा या किसी की देखभाल
काम हो सकती है।

काम वह जगह है जहाँ हमारी ज़िम्मेदारी
बाहरी दुनिया से मिलती है।

और यहाँ हमें एक बहुत महत्वपूर्ण चीज़
मिलती है:

परिणाम।

मेहनत का कोई न कोई नतीजा सामने
आता है।

कौशल बेहतर हो सकता है।

गलतियाँ दिखाई देती हैं।

दूसरे लोग हम पर निर्भर होते हैं।

और धीरे-धीरे हमें समझ आता है कि
केवल अच्छी नीयत से काम पूरा नहीं
होता।

आस्था, विश्वास या भीतर का आधार

तीसरे पैर की बात करते समय भाषा थोड़ी
सावधानी माँगती है।

किसी के लिए यह धर्म है।

किसी के लिए अध्यात्म।

किसी और के लिए दर्शन, ध्यान, प्रकृति,
समुदाय, मानवतावाद, विज्ञान या जीवन
को देखने का कोई गहराई से सोचा हुआ
तरीका।

कोई ईश्वर में दृढ़ विश्वास रख सकता है।

कोई निश्चित नहीं हो सकता।

कोई ईश्वर में विश्वास न भी रख सकता है।

इन मतभेदों के बावजूद एक प्रश्न हम सब पूछ सकते हैं:

मुश्किल समय में आपको भीतर से स्थिर क्या रखता है?

आज की समस्या को आज से कहीं बड़ी तस्वीर में देखने में क्या मदद करता है?

यह तीसरा रास्ता यह तय करने के लिए नहीं है कि किसका विश्वास सही है।

यह अर्थ, दृष्टिकोण और आंतरिक आधार की मानवीय आवश्यकता को समझने का निमंत्रण है।

संतुलन का अर्थ बराबरी नहीं

त्रिपाई हमें एक और बात सिखाती है।

तीनों पैरों को हर दिन बराबर समय देना आवश्यक नहीं है।

घर में नया बच्चा आए तो कुछ समय के लिए घर सबसे अधिक ध्यान माँगेगा।

परीक्षा आए तो पढ़ाई आगे आ सकती है।

बीमारी पूरी व्यवस्था बदल सकती है।

किसी बड़े काम के दौरान पेशा कुछ समय
के लिए बहुत अधिक समय माँग सकता
है।

ज़िंदगी बदलती रहती है।

सवाल यह नहीं है कि दिन का ठीक एक-
तिहाई हिस्सा हर पैर को मिला या नहीं।

सवाल यह है कि क्या किसी एक पैर को
इतनी देर से नज़रअंदाज़ किया जा रहा है
कि पूरा ढाँचा झुकने लगा है।

संतुलन हमेशा बराबरी नहीं होता।

संतुलन स्थिरता है।

जब एक पैर कमज़ोर होने लगे

एक क्षेत्र की सफलता दूसरे क्षेत्र की हर
कमी पूरी नहीं कर सकती।

पेशे की सफलता हमेशा टूटते हुए घर को
नहीं बचा सकती।

प्यार करने वाला परिवार हमारी पेशेवर
ज़िम्मेदारियाँ हमारे बदले पूरी नहीं कर
सकता।

आस्था या दर्शन रोज़मर्रा की हर
व्यावहारिक ज़िम्मेदारी की जगह नहीं ले
सकते।

और काम जीवन के अर्थ से जुड़े हर सवाल
का जवाब नहीं दे सकता।

हर पैर कुछ अलग देता है।

इसीलिए त्रिपाई हमारे लिए उपयोगी है।

यह हमें नहीं बताती कि कौन-सा पैर सबसे महत्वपूर्ण है।

यह हमें पूरे ढाँचे को देखने के लिए कहती है।

दबाव कहाँ है?

कौन-सा पैर बहुत अधिक भार उठा रहा है?

किसे हमने नज़रअंदाज़ कर दिया?

और जब वह कमज़ोर होता है तो बाकी जीवन पर क्या असर पड़ता है?

शायद हमारी अगली बातचीत यहीं से शुरू होनी चाहिए।

क्योंकि घर, काम और विश्वास को देखने के बाद एक और सवाल सामने आता है:

हमारे भीतर ऐसी कौन-सी शक्तियाँ हैं जो इन तीनों जगहों पर हमारे व्यवहार को प्रभावित करती हैं?

अब बातचीत इंसान के भीतर जाएगी।

Velcro Wall

अपनी त्रिपाई को संभालिए। दुनिया को देखने का आपका आधार इसी पर टिका है।

घर, काम और विश्वास को बराबर समय देना आवश्यक नहीं है। लेकिन तीनों को

इतना ध्यान अवश्य चाहिए कि पूरा ढाँचा स्थिर रहे।

संतुलन का अर्थ बराबरी नहीं। संतुलन का अर्थ स्थिरता है।

जब जीवन का एक हिस्सा कमज़ोर होने लगे, केवल उस समस्या को मत देखिए। देखिए कि उसका भार बाकी जीवन पर क्या असर डाल रहा है।

पहले त्रिपाई को मज़बूत बनाइए। फिर तय कीजिए कि उसके ऊपर क्या बनाना है।

CHAPTER 3

हिंदी संस्करण — अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिए

एक बात हममें से लगभग हर किसी ने
बचपन से सुनी है:

अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिए।

बात इतनी सीधी लगती है कि शायद इसी
कारण हम कभी-कभी उसके भीतर छिपी
गहराई को नहीं देखते।

ध्यान दीजिए कि इसमें क्या **नहीं** कहा गया
है।

यह नहीं कहा गया:

सबसे श्रेष्ठ बनो।

यह नहीं कहा गया कि आपको Michael Jordan बनना है, Albert Einstein बनना है, शहर का सबसे अमीर आदमी बनना है, सबसे प्रसिद्ध डॉक्टर बनना है, सबसे बड़ा व्यवसाय खड़ा करना है या सबसे बड़ा घर खरीदना है।

बात केवल इतनी है:

**जो काम इस समय आपके सामने है,
उसमें अपनी पूरी ईमानदार कोशिश
लगाइए।**

इन दोनों बातों में बहुत बड़ा अंतर है।

आगे खिसकती हुई मंज़िल

हम जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा परिणामों
के पीछे दौड़ते हुए निकाल देते हैं।

हम खुद से कहते हैं:

बस इतना पैसा हो जाए, फिर मैं खुश हो
जाऊँगा।

पैसा आ जाता है।

फिर वह संख्या बदल जाती है।

हमें घर चाहिए।

घर मिल जाता है।

फिर सामने उससे बड़ा घर दिखाई देता है।

एक कार चाहिए। वह मिल जाती है। कुछ समय बाद दूसरी कार आकर्षित करने लगती है।

हम पहचान चाहते हैं। पहचान मिलती है और फिर दिखाई देता है कि किसी और को हमसे अधिक पहचान मिली है।

मंज़िल फिर आगे खिसक गई।

महत्वाकांक्षा अपने आप में बुरी नहीं है। वही हमें पढ़ने, बनाने, खोजने, सृजन करने और आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर सकती है।

समस्या तब शुरू होती है जब हम अपनी खुशी को परिणाम के साथ बाँध देते हैं।

क्योंकि परिणाम हमेशा हमारे हाथ में नहीं होते।

हमारी कोशिश कुछ अलग है।

प्लंबर, फार्मासिस्ट और डॉक्टर

आप प्लंबर हों, बेकर हों, फार्मासिस्ट हों, शिक्षक हों, बढ़ई हों, डॉक्टर हों या कोई नया काम सीख रहे हों—मूल बात नहीं बदलती।

यह आवश्यक नहीं कि आपको अपने काम का हर क्षण अच्छा लगे।

यह भी आवश्यक नहीं कि आप उसे अपने जीवन का महान “पैशन” घोषित करें।

लेकिन जब वह काम कर रहे हैं:

उसे अच्छी तरह कीजिए।

हमने अक्सर लगभग एक ही चीज़ बेचने वाली दो दुकानें देखी हैं। कभी-कभी वे एक-दूसरे के बिल्कुल पास होती हैं।

एक मुश्किल से चलती है।

दूसरी खूब चलती है।

क्यों?

कीमत का असर हो सकता है। जगह का असर हो सकता है। किस्मत का भी हो सकता है।

लेकिन कभी-कभी अंतर दरवाज़े से भीतर जाते ही दिखाई दे जाता है।

एक व्यक्ति सामने **ग्राहक** देखता है।

दूसरा सामने **इंसान** देखता है।

कल्पना कीजिए कि गर्मी के दिन आप किसी फार्मसी में जाते हैं।

दवा बेचने की जल्दी करने के बजाय फार्मासिस्ट कहता है:

आइए, पहले बैठिए। आप ठीक नहीं लग रहे। डॉक्टर ने क्या लिखा है, देखते हैं। फिर विकल्प देखते हैं और आपके लिए क्या ठीक रहेगा, वह समझते हैं।

जब आप वहाँ से निकलते हैं, आपको केवल दवा याद नहीं रहती।

आपको याद रहता है कि **आपके साथ व्यवहार कैसा हुआ।**

अगली बार कोई फार्मैसी, प्लंबर, मोची, रेस्तराँ या डॉक्टर पूछता है तो किसी का नाम तुरंत याद आ जाता है।

क्यों?

क्योंकि उस व्यक्ति ने अपना काम अच्छी तरह किया था।

सिर्फ तकनीकी रूप से नहीं।

इंसानियत के साथ।

नब्ज़

चिकित्सा ने मुझे यह बात बार-बार
सिखाई।

एक डॉक्टर कमरे में आ सकता है, चार्ट
देख सकता है और तुरंत कहना शुरू कर
सकता है:

दवा क्यों नहीं ली?

सिगरेट अब तक क्यों नहीं छोड़ी?

वज़न कम करना होगा।

हो सकता है तीनों बातें चिकित्सकीय रूप
से बिल्कुल सही हों।

लेकिन उसी कमरे में प्रवेश करने का एक
और तरीका है।

बैठिए।

मरीज़ को नाम से बुलाइए।

नब्ज़ पकड़िए।

सुनिए।

समझिए कि पिछली मुलाकात के बाद
उसकी ज़िंदगी में क्या हुआ।

अंत में दवा वही हो सकती है।

लेकिन अनुभव बिल्कुल अलग होगा।

एक ने चिकित्सा संबंधी जानकारी दी।

दूसरे ने चिकित्सा की।

अपना सर्वश्रेष्ठ देना केवल अपने विषय
को जानना नहीं है।

उस काम में अपना ध्यान और मानवीयता
भी लाना है।

हम प्रार्थना किस बात की करें?

एक बार मेरे पिता चाहते थे कि कोई
ज्योतिषी या धर्मगुरु प्रार्थना करे कि उनका
बेटा सफल डॉक्टर बने, उसकी प्रैक्टिस
खूब चले और उसके पास बहुत मरीज़
आएँ।

उस व्यक्ति का उत्तर मेरे साथ रह गया।

उसका आशय कुछ ऐसा था:

क्या आप चाहते हैं कि मैं भगवान से
प्रार्थना करूँ कि लोग बीमार पड़ें ताकि
आपके बेटे के पास अधिक मरीज़ आएँ?

वह ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकता था।

लेकिन दूसरी प्रार्थना कर सकता था:

**जो भी आपके बेटे के पास आए, वह
पहले से बेहतर होकर वापस जाए।**

इस छोटे से अंतर में एक पूरी जीवन-दृष्टि
छिपी है।

रेस्तराँ चलाने वाले को यह नहीं चाहना
चाहिए कि दुनिया भूखी हो जाए ताकि
उसका कारोबार बढ़े।

वह उस चीज़ पर ध्यान दे सकता है जो
उसके हाथ में है:

जो भी मेरे दरवाज़े से भीतर आए, उसे
अच्छा भोजन और अच्छा अनुभव देकर
भेजूँ।

वह ग्राहक फिर आ सकता है।

दूसरों को बता सकता है।

कारोबार बढ़ सकता है।

या ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती हैं जिन
पर मालिक का कोई नियंत्रण नहीं।

लेकिन उसने अपना काम ध्यान और
ईमानदारी से किया।

कोशिश कोई गारंटी नहीं है

यहीं Mr. Caution को बातचीत में आना चाहिए।

अपना सर्वश्रेष्ठ देने से अच्छे परिणाम की गारंटी नहीं मिलती।

ऐसा मानना सुखद होता।

लेकिन सच नहीं होता।

हम बहुत अच्छे निर्णय ले सकते हैं और फिर भी बहुत खराब परिस्थितियों का सामना कर सकते हैं।

बाज़ार गिरते हैं।

व्यवसाय असफल होते हैं।

बीमारी आती है।

दुर्घटनाएँ होती हैं।

महामारियाँ आती हैं।

तूफ़ान किसी इमारत को नुकसान पहुँचाने से पहले यह नहीं पूछता कि उसके मालिक ने कितनी मेहनत की थी।

जीवन में ऐसे बहुत से तत्व हैं जिन्हें मेहनत और बुद्धि भी पूरी तरह नियंत्रित नहीं कर सकते।

लोग उन्हें अलग-अलग नाम देते हैं:

किस्मत।

संयोग।

भाग्य।

कर्म।

ईश्वर।

उन पर किसी और दिन चर्चा करेंगे।

आज के लिए इतना समझना पर्याप्त है:

कुछ चीज़ें हमारे हाथ में हैं। कुछ नहीं हैं।

अपना सर्वश्रेष्ठ देना परिणाम की गारंटी नहीं है।

इसका अर्थ है अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी लेना।

जब जीवन योजना के अनुसार नहीं चलता

मैंने यह बात अपने जीवन से सीखी।

मैं जिम में था और अपने स्वास्थ्य के लिए
कुछ अच्छा करने की कोशिश कर रहा था,
जब एक दुर्घटना ने मेरी ज़िंदगी की दिशा
बदल दी।

मैं बाकी जीवन यह पूछते हुए बिता सकता
हूँ:

क्यों?

वहीं क्यों?

उसी समय क्यों?

जब मैं अपने स्वास्थ्य के लिए कुछ अच्छा
कर रहा था तभी क्यों?

लेकिन आखिरकार उससे अधिक उपयोगी
प्रश्न सामने आता है:

**मेरे पास जो आज बचा है, मैं उसके साथ
क्या कर सकता हूँ?**

यह सवाल खोई हुई चीज़ें वापस नहीं
लाता।

पुनर्वास को आसान नहीं बनाता।

कल की गारंटी नहीं देता।

लेकिन जीवन का कुछ हिस्सा फिर उस
जगह लौट आता है जहाँ मेरा अभी भी
थोड़ा नियंत्रण है:

आज की मेरी कोशिश।

कभी अपना सर्वश्रेष्ठ देना किसी
असाधारण उपलब्धि का नाम है।

कभी अपना सर्वश्रेष्ठ देना केवल फिर से
उठ खड़े होने का नाम है।

दोनों महत्वपूर्ण हैं।

मार्गदर्शन नियंत्रण नहीं है

यही सिद्धांत बच्चों की परवरिश में भी
दिखाई देता है।

माता-पिता मार्ग दिखा सकते हैं।

शिक्षा दे सकते हैं।

अवसर बना सकते हैं।

गलती दिखाई दे तो चेतावनी दे सकते हैं।

लेकिन आखिरकार बच्चे को स्वयं चुनना होता है।

हम किसी दूसरे व्यक्ति की ज़िंदगी उसके लिए नहीं जी सकते।

अगर कोई बच्चा पढ़ना चाहता है और मैं उसकी सहायता कर सकता हूँ, तो शायद मैं उसकी फीस सीधे संस्था को दे दूँ ताकि शिक्षा का अवसर वास्तव में उपलब्ध हो।

उसके बाद विद्यार्थी को फिर भी जाना होगा।

पढ़ना होगा।

फैसले लेने होंगे।

मेरी ज़िम्मेदारी है कि मैं अपना हिस्सा
अच्छी तरह निभाऊँ।

उसकी ज़िम्मेदारी है कि वह अपना हिस्सा
अच्छी तरह निभाए।

यह सीमा बहुत महत्वपूर्ण है।

इसके बिना सहायता धीरे-धीरे नियंत्रण बन
सकती है।

जीवन सीधी रेखा नहीं है

शायद चिकित्सा हमें इसका सबसे सरल
चित्र देती है।

हम कभी-कभी सफल जीवन की कल्पना
ऐसी रेखा के रूप में करते हैं जो लगातार
ऊपर जाती रहे।

लेकिन जीवित चीज़ें ऐसी नहीं दिखतीं।

ECG चलता है।

ऊपर।

नीचे।

फिर ऊपर।

उसमें उतार-चढ़ाव है क्योंकि वहाँ जीवन
है।

एकदम सपाट रेखा हमारा लक्ष्य नहीं है।

जीवन में सफलता भी होगी, असफलता
भी। आत्मविश्वास भी होगा, अनिश्चितता
भी। ताकत भी होगी, कमजोरी भी।
शुरुआत भी होगी और अंत भी।

हमारा उद्देश्य हर गिरावट को जीवन से
मिटा देना नहीं हो सकता।

हमारा काम है प्रतिक्रिया देना।

सीखना।

बदलना।

जहाँ संभव हो, फिर उठना।

और आगे बढ़ना।

फिर उसी त्रिपाई पर

और यहाँ हम फिर जीवन की उस त्रिपाई पर लौटते हैं।

पैसा जीवन के कई हिस्सों को मजबूत कर सकता है।

वह सुरक्षा, शिक्षा, सुविधा और अवसर दे सकता है।

लेकिन धन अपने आप उपेक्षित परिवार को ठीक नहीं कर सकता, काम को अर्थपूर्ण नहीं बना सकता और हमारे भीतर स्थिरता पैदा नहीं कर सकता।

एक पैर पर जीत जाना पूरी त्रिपाई को स्थिर नहीं बनाता।

इसलिए शायद बेहतर प्रश्न यह नहीं है:

मैं कितना जमा कर सकता हूँ?

बल्कि:

**जो जीवन अभी मेरे सामने है, उसे मैं
कितनी अच्छी तरह जी सकता हूँ?**

काम कर रहे हैं तो काम कीजिए।

कोई बोल रहा है तो सुनिए।

खा रहे हैं तो खाइए।

पढ़ रहे हैं तो पढ़िए।

परिवार के साथ हैं तो उनके साथ रहिए।

उपस्थित रहना भी प्रयास का हिस्सा है।

एक साथ पाँच काम करने की कोशिश
कभी-कभी यह सुनिश्चित कर देती है कि
हम किसी एक को भी अपना सर्वश्रेष्ठ नहीं
दे रहे।

पर्याप्त

दिन के अंत में अपने आप से यह कह पाने
में एक अलग तरह की स्वतंत्रता है:

**आज मेरे पास जो था, उसके साथ मैंने
अपना सर्वश्रेष्ठ दिया।**

यह नहीं:

मैं जीत गया।

यह नहीं:

मैं सबसे अच्छा बन गया।

यह भी आवश्यक नहीं:

सब कुछ ठीक हुआ।

बस:

मैंने अपनी पूरी कोशिश की।

हो सकता है कल पता चले कि आज का
हमारा सर्वश्रेष्ठ पर्याप्त नहीं था।

तो सीखिए।

बेहतर बनिए।

फिर कोशिश कीजिए।

परिणाम महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे हमें बताते हैं कि हमारी कोशिश काम कर रही है या नहीं।

लेकिन परिणाम अकेले न हमारी कोशिश का पूरा मूल्य तय करते हैं, न हमारा।

शायद मन की शांति का एक हिस्सा यहीं से शुरू होता है।

उन सभी चीज़ों को पाने से नहीं जिन्हें हमने कभी खुशी की शर्त बना लिया था।

बल्कि यह जानने से कि आज जीवन ने जो कुछ हमारे सामने रखा,

हमने उसका सामना अपनी पूरी क्षमता से किया।

Velcro Wall

**अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिए। सबसे श्रेष्ठ
होना आवश्यक नहीं है।**

अपनी ऊर्जा उन चीज़ों पर लगाइए जिन पर
आपका प्रभाव है: आपकी मेहनत, ध्यान,
तैयारी, देखभाल और प्रतिक्रिया।

**मेहनत अच्छे परिणाम की संभावना
बढ़ाती है। उसकी गारंटी नहीं देती।**

जीवन में हमेशा कुछ चीज़ें हमारे नियंत्रण
से बाहर रहेंगी।

परिणाम निराश करे तो उससे सीखिए।
परिणाम अच्छा हो तो उससे भी सीखिए।

फिर उस चीज़ पर लौट आइए जो अब भी आपकी है:

आपकी कोशिश।

और दिन के अंत में यदि आप कह सकें—

“मेरे पास जो था, उसके साथ मैंने अपना सर्वश्रेष्ठ दिया।”

—तो शायद उसकी कीमत उस अगली मंज़िल तक पहुँचने से कहीं अधिक है, जो वहाँ पहुँचते ही फिर आगे खिसक जाती है।

CHAPTER FOUR

बेल कर्व

अपनी ज़िंदगी अपवादों पर मत बनाइए

आँकड़ों की दुनिया में एक बहुत साधारण-
सी तस्वीर है जो हमें ज़िंदगी के बारे में एक
बहुत बड़ी बात समझा सकती है—बेल
कर्व।

तकनीकी रूप से ज़िंदगी की हर चीज़ एक
सही घंटी के आकार के कर्व में नहीं आती।
कमाई, शोहरत, काम के घंटे और
सफलता के आँकड़े अलग-अलग तरह से
पैल सकते हैं।

लेकिन इसका मूल विचार बहुत काम का है:

दोनों छोरों को घूरना बंद कीजिए। बीच का असली हिस्सा देखिए।

जब हम किसी पेशे की बात करते हैं, हमें अक्सर उसके सितारे दिखाई देते हैं।

वह अभिनेता जो सुपरस्टार बन गया।

वह संगीतकार जिसने स्टेडियम भर दिए।

वह उद्यमी जो अरबपति बन गया।

वह नेता जो बहुत तेज़ी से ऊपर पहुँच गया।

ये लोग वास्तविक हैं।

लेकिन ये अपवाद भी हैं।

और बच्चों को करियर की सलाह देते
समय हमारी एक बड़ी भूल यही है:

हम एक असाधारण परिणाम को सामान्य
रास्ता समझ बैठते हैं।

शुरुआत “क्यों?” से कीजिए

कोई बच्चा मेरे पास आकर कहता है:

“मैं संगीतकार बनना चाहता हूँ।”

बहुत अच्छा।

मैं यह नहीं कहूँगा, “संगीतकार मत बनो।”

मैं पूछूँगा:

क्यों?

तुम्हें संगीत से प्रेम है?

वाद्य बजाना अच्छा लगता है?

मंच पसंद है?

या तुम्हें प्रसिद्ध होना है?

अगर सड़क पर कोई तुम्हें कभी न पहचाने,
तब भी क्या तुम संगीत बजाना चाहोगे?

अगर वर्षों तक अभ्यास करना पड़े और
साथ-साथ किसी दूसरी नौकरी से घर
चलाना पड़े, तब भी?

एक ही वाक्य—“मैं संगीतकार बनना चाहता हूँ”—के पीछे बिल्कुल अलग-अलग इच्छाएँ छिपी हो सकती हैं।

अब असली बातचीत शुरू होती है।

सपना मत मारिए—रास्ता बदलिए

मान लीजिए केवल संगीत से सुरक्षित जीवन बनाने की संभावना कम है।

क्या इसका मतलब संगीत छोड़ देना चाहिए?

बिल्कुल नहीं।

पहले ऐसी योग्यता बनाइए जो आपको
आर्थिक आधार दे सके।

संगीत साथ रखिए।

शाम को अभ्यास कीजिए।

कक्षाएँ लीजिए।

सप्ताहांत में बजाइए।

अच्छे संगीतकारों के साथ काम कीजिए।

ऑडिशन दीजिए।

और यदि एक दिन बड़ा अवसर आता है—
पकड़ लीजिए।

लेकिन अगर वह अवसर नहीं आया, तब
भी आपकी ज़िंदगी खड़ी है।

आप अपने जुनून का पीछा मजबूरी से नहीं, ताकत की स्थिति से कर रहे हैं।

अपवाद का जाल

हमें असाधारण लोगों की कहानियाँ पसंद हैं।

किसी ने वर्षों संघर्ष किया और अचानक स्टार बन गया।

किसी ने बहुत कम से शुरुआत करके साम्राज्य खड़ा कर दिया।

किसी को एक मौका मिला और पूरी ज़िंदगी बदल गई।

बहुत बढ़िया।

उनसे प्रेरणा लीजिए।

लेकिन अपना भविष्य उनके आँकड़ों पर
मत बनाइए।

किसी अपवाद से यह सिद्ध होता है कि
कुछ संभव है।

यह सिद्ध नहीं होता कि वह संभावित है।

अगर आपकी पूरी योजना एक “बड़े ब्रेक”
पर निर्भर है, तो वह योजना कम और दाँव
अधिक है।

बीच को देखिए

किसी पेशे को समझते समय मैं सबसे
अमीर व्यक्ति को नहीं देखना चाहता।

सबसे गरीब को भी नहीं।

मैं जानना चाहता हूँ:

**उस पेशे में एक सामान्य, मेहनती, योग्य
व्यक्ति की ज़िंदगी कैसी है?**

मध्य के आसपास देखिए।

थोड़ा नीचे।

थोड़ा ऊपर।

यहीं आपको अपने संभावित भविष्य की
बेहतर तस्वीर मिलेगी।

सुपरस्टार प्रेरणा के लिए अच्छा है।

औसत परिणाम योजना बनाने के लिए
अच्छा है।

केवल पैसा मत नापिए

यहीं बेल कर्व वास्तव में शक्तिशाली हो
जाता है।

करियर के लिए केवल कमाई का कर्व
क्यों?

दस चीज़ें देखिए:

1. कमाई और आर्थिक सुरक्षा
2. काम के घंटे
3. प्रशिक्षण में लगने वाला समय और
पैसा

4. स्थायी रोजगार की संभावना
5. तनाव और जिम्मेदारी
6. परिवार के लिए समय
7. कहाँ रहकर काम कर सकते हैं
8. अपने निर्णयों पर कितना नियंत्रण होगा
9. अपना व्यवसाय या स्वतंत्र काम करने की संभावना
10. लंबे समय की सुरक्षा और सेवानिवृत्ति

अब करियर की तस्वीर बदल जाती है।

एक पेशा बहुत पैसा देगा लेकिन समय खा जाएगा।

दूसरा कम पैसा देगा लेकिन परिवार के लिए शाम बचाएगा।

एक आपको अपना व्यवसाय बनाने देगा।

दूसरे में वर्षों तक किसी और के आपको चुनने का इंतज़ार करना पड़ सकता है।

कोई एक सही उत्तर नहीं है।

सही उत्तर वह है जो पूरी जानकारी समझने के बाद आपका उत्तर बने।

सबसे महत्वपूर्ण सवाल

हर पेशे से पहले पूछिए:

मैं यह क्यों करना चाहता हूँ?

“मैं अभिनेता बनना चाहता हूँ।”

क्यों?

अभिनय की कला?

मंच?

कहानियाँ?

या शोहरत?

अगर असली जवाब है, “मैं चाहता हूँ लोग मुझे पहचानें,” तो शायद इच्छा अभिनय की नहीं बल्कि प्रसिद्धि की है।

दोनों एक चीज़ नहीं हैं।

सच्चा अभिनेता छोटे मंच पर भी अभिनय से प्रेम कर सकता है।

वह नाटक सिखा सकता है।

निर्देशन कर सकता है।

दशकों तक कला सीख सकता है।

इसी तरह:

“मैं वैज्ञानिक बनना चाहता हूँ।”

क्यों?

“मुझे कठिन समस्याएँ हल करना अच्छा लगता है।”

अब हमारे पास कुछ वास्तविक है।

शायद उस इच्छा को पूरा करने वाले पाँच
अलग-अलग करियर मौजूद हों।

पहला जवाब बताता है कि व्यक्ति **क्या** चाहता है।

बार-बार पूछा गया “क्यों?” बताता है कि उसे वास्तव में **क्या चाहिए**।

अब ट्राइपॉड वापस लाइए

ज़िंदगी तीन पैरों पर खड़ी है:

काम। घर। आस्था और रिश्ते।

किसी पेशे को केवल एक पैर देखकर नहीं चुना जा सकता।

बहुत पैसा है लेकिन परिवार के लिए समय नहीं?

यह कीमत है।

प्रतिष्ठा है लेकिन लगातार तनाव और दुःख है?

यह भी कीमत है।

काम पसंद है लेकिन बाकी रिश्तों और जीवन के लिए कोई जगह नहीं बचती?

यह भी कीमत है।

बेल कर्व बताता है कि क्या होने की संभावना है।

ट्राइपॉड पूछता है कि क्या वह ज़िंदगी आपके लिए सही है।

यही synthesis है।

समस्या को तोड़िए।

हर हिस्से को समझिए।

फिर सबको वापस जोड़िए।

पहले बनाइए मत—पहले पूछिए

कल्पना कीजिए कोई मकान ऐसे बनाए:

नींव डाल दी।

दीवारें खड़ी कर दीं।

छत लगा दी।

फिर पूछा:

“रसोई कहाँ बनानी थी?”

हँसी आएगी।

लेकिन लोग करियर ऐसे ही बनाते हैं।

सालों पढ़ाई कर लेते हैं।

पैसा लगा देते हैं।

पेशा चुन लेते हैं।

ज़िंदगी उसी के आसपास खड़ी कर लेते हैं।

और फिर पूछते हैं:

“क्या मुझे यह ज़िंदगी चाहिए भी थी?”

पहले सवाल पूछिए।
ब्लूप्रिंट बनाइए।
फिर निर्माण कीजिए।

केवल फीस देना मार्गदर्शन नहीं है

बच्चे की ज़िम्मेदारी केवल बच्चे की नहीं
है।

माता-पिता।

शिक्षक।

स्कूल।

काउंसलर।

समाज।

सबकी भूमिका है।

स्कूल की फीस देना महत्वपूर्ण है।

खाना, कपड़े और सुरक्षा देना महत्वपूर्ण है।

लेकिन पैसा एक साधन है।

पैसा मार्गदर्शन का विकल्प नहीं है।

कभी बच्चे के साथ बैठकर पूछिए:

क्यों?

क्या तुमने इस पेशे के किसी व्यक्ति से बात की है?

क्या तुमने उसका एक सामान्य काम का दिन देखा है?

आमदनी जानते हो?

प्रशिक्षण जानते हो?

त्याग जानते हो?

जिस ज़िंदगी की तुम कल्पना कर रहे हो,
क्या यह पेशा वास्तव में उससे मेल खाता है?

इस बातचीत में लगभग कोई पैसा नहीं लगता।

लेकिन यह किसी की दशकों की ज़िंदगी बदल सकती है।

वेल्ल्रो वॉल

बड़ा फैसला लेने से पहले ये सवाल दीवार पर चिपका दीजिए:

क्यों?

मैं वास्तव में यह क्यों चाहता हूँ?

बीच कहाँ है?

सामान्य योग्य व्यक्ति के साथ क्या होता है?

संभावना क्या है?

जिस परिणाम की मैं कल्पना कर रहा हूँ, वह कितना सामान्य है?

कीमत क्या है?

समय, पैसा, प्रशिक्षण और त्याग कितना?

दूसरे रास्ते क्या हैं?

Plan A न हुआ तो इन कौशलों से और क्या कर सकता हूँ?

मेरा ट्राइपॉइंड?

काम, घर, आस्था और रिश्तों पर क्या असर पड़ेगा?

साधारण मंगलवार?

क्या मुझे इस पेशे का सामान्य कामकाजी दिन भी पसंद आएगा?

आउटलायर टेस्ट?

मैं तथ्य देखकर योजना बना रहा हूँ या

किसी असाधारण व्यक्ति की कहानी
देखकर?

और अंत में:

**पहले पूछो। ब्लूप्रिंट बनाओ।
फिर बनाओ।**

बड़े सपने देखो।

अपने जुनून को मत छोड़ो।

लेकिन संभावना और संभाव्यता को एक
मत समझो।

तथ्यों को समझो।

अपने आप को समझो।

अपने ट्राइपॉड को बचाओ।

फिर निर्णय लो।

यह सपना छोड़ना नहीं है।

यह सपने के नीचे इतनी मजबूत नींव
बनाना है कि वह खड़ा रह सके।

CHAPTER FIVE

अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिए

मैंने दुनिया भर में लोगों को किसी न किसी चीज़ के पीछे भागते देखा है।

कोई पैसे के पीछे भागता है। कोई शोहरत के। कोई मकान, जायदाद, पहचान, इज़्ज़त या सफलता के पीछे।

चीज़ अलग हो सकती है, लेकिन दौड़ वही रहती है।

मुसीबत यह है कि जिस मंज़िल तक पहुँचने के लिए हम इतनी मेहनत करते हैं, वहाँ पहुँचकर अक्सर पता चलता है कि मंज़िल ही आगे खिसक गई है।

थोड़ा और पैसा चाहिए। थोड़ी और
पहचान। थोड़ा बड़ा घर। एक और
उपलब्धि।

जिस रेखा को हम अंत समझ रहे थे, वह
फिर आगे चली गई।

मैं कभी-कभी मज़ाक में कहता हूँ—ज़िंदगी
उस कुतिया की तरह है जो आपसे तेज़
दौड़ रही है। आप सारी उम्र उसके पीछे
भागते रहिए, शायद फिर भी उसे पकड़ न
पाएँ।

इसलिए मेरा तरीका बहुत सरल है:

अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिए।

बस।

आपके सामने जो काम है, उसे पूरी
ईमानदारी और पूरी क्षमता से कीजिए।
परिणाम को घूरते मत रहिए। इस बात पर
ध्यान दीजिए कि इस समय जो आप कर
रहे हैं, उसे कितनी अच्छी तरह कर रहे हैं।

पैसा आएगा तो अच्छा है। शोहरत आएगी
तो अच्छा है। आपके काम की सराहना
होगी तो अच्छा है।

और शायद इनमें से कुछ न भी आए।

लेकिन प्रयास आपका था।

करोल बाग की एक दुकान

एक बार दिल्ली के करोल बाग में मैं अपने
एक अच्छे मित्र के साथ एक दुकान पर
गया।

वहाँ कुर्ते बिकते थे।

दुकान अपने आप में कोई बहुत असाधारण
जगह नहीं थी। ऊपर कुछ लड़के खड़े थे
जो ग्राहकों की माँग के अनुसार कपड़े
निकालकर नीचे भेज रहे थे।

लेकिन दुकान चलाने वाले बुजुर्ग सज्जन
असाधारण थे।

वे खड़े होकर हर आने वाले का स्वागत
करते।

कोई दबाव नहीं।

“आइए। आराम से देखिए। किस अवसर के लिए चाहिए? आप क्या चाहते हैं? मुझे बताइए, मैं आपकी मदद करता हूँ।”

वे सचमुच यह जानना चाहते थे कि उस व्यक्ति के लिए सही कपड़ा कौन-सा है।

कभी किसी को कुर्ता पहनाकर देखते और कहते, “मुझे नहीं लगता यह आप पर उतना अच्छा लग रहा है। दूसरा पहनकर देखिए। उसमें आप थोड़े पतले लगेंगे। लेकिन आखिर फ़ैसला आपका है।”

ज़रा सोचिए।

एक दुकानदार खुद ग्राहक से कह रहा है
कि यह मत लीजिए—यह आप पर अच्छा
नहीं लग रहा।

मैं कुछ देर उन्हें काम करते देखता रहा।

फिर मैंने कहा, “आप हर ग्राहक के लिए
इतनी मेहनत करते हैं। मुझे यह बहुत
अच्छा लगा।”

उनका जवाब बहुत सीधा था।

“मैं यहाँ काम करने आता हूँ।”

पैसे के पीछे भागने नहीं।

हर हाल में सामान बेचने नहीं।

काम करने।

उनकी नज़र में उनका काम था किसी व्यक्ति को उसके लिए सही कपड़ा देना— और वे उस काम को अच्छी तरह करना चाहते थे।

फिर मेरी नज़र उनकी कलम पर गई।

मैंने कहा, “आपकी कलम बहुत अच्छी है।”

वे मुस्कुराए।

वह Montblanc थी।

उन्होंने बताया कि अपना पहला कॉन्ट्रैक्ट उन्होंने उसी कलम से साइन किया था।

मुझे यह छोटी-सी बात बहुत पसंद आई।

वह व्यक्ति सफलता के फल से विरक्त नहीं था। पैसा और सफलता उसके लिए बेकार नहीं थे। उसे अपना पहला कॉन्ट्रैक्ट याद था और उससे जुड़ी कलम आज भी उसके लिए ख़ास थी।

लेकिन सफलता उसके काम को नहीं चला रही थी।

पहले काम था।

यही अंतर है।

एक ही सड़क पर दो दुकानें हो सकती हैं।
लगभग वही सामान, लगभग वही ग्राहक।
एक चलती है, दूसरी नहीं चलती।

हम अक्सर इसका कोई बड़ा और जटिल
कारण ढूँढ़ते हैं।

कभी-कभी अंतर केवल नज़रिए का होता
है।

एक व्यक्ति पैसे कमाने आता है।

दूसरा अपना काम अच्छी तरह करने आता
है।

और बड़ी दिलचस्प बात यह है कि जो
व्यक्ति काम के पीछे जाता है, पैसा अक्सर
उसके पीछे आने लगता है।

करोल बाग की उस दोपहर ने मुझे फिर
वही बात सिखाई जिसे मैं वर्षों से मानता
आया हूँ:

सफलता के पीछे मत भागिए। आपके सामने जो काम है, उसमें उत्कृष्टता के पीछे जाइए।

आपका प्रयास आपके हाथ में है।

परिणाम नहीं।

दुनिया तालियाँ बजाएगी या नहीं, यह आपके नियंत्रण में नहीं है। धन, पहचान, पद, प्रेम या शोहरत की कोई गारंटी नहीं होती।

लेकिन दिन के अंत में आप स्वयं से एक प्रश्न अवश्य पूछ सकते हैं:

क्या मैंने अपना सर्वश्रेष्ठ दिया?

अगर उत्तर हाँ है, तो संतुष्ट रहिए।

कल फिर अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिए।

परिणामों की एक अजीब आदत है—वे
अक्सर अपना रास्ता स्वयं खोज लेते हैं।

और अगर सफलता आए, तो उसका आनंद
ज़रूर लीजिए।

चाहें तो Montblanc भी खरीद लीजिए।

बस यह मत भूलिए कि पहले क्या आया
था।

CHAPTER SIX

छोटी बात, बड़ा असर

ज़िंदगी में कई बार बहुत बड़े नतीजे किसी बहुत छोटी-सी बात से शुरू होते हैं।

एक निशानी जिस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

एक माप जो लेना भूल गए।

एक लाइन जो ठीक से जुड़ी नहीं थी।

एक काम जिसके बारे में हर किसी ने सोचा कि शायद किसी और ने कर दिया होगा।

गलती छोटी हो सकती है।

उसका नतीजा छोटा हो, यह ज़रूरी नहीं।

पजामे में सर्जन

कई साल पहले, जब मैं छोटा था, मेरी बहन का इथियोपिया के Black Lion

Hospital में appendix का operation हुआ।

Operation सामान्य था, लेकिन उसके बाद वह जिस तरह होश में आनी चाहिए थी, नहीं आई।

घंटे दिनों में बदलने लगे।

Doctors आए। Consultants ने देखा। Tests हुए। अलग-अलग opinions दिए गए।

धीरे-धीरे बातें बहुत गंभीर होने लगीं।

हमें यह तक बताया जाने लगा कि शायद वह brain-dead हो जाए।

आखिर मेरे पिता का सब्र टूट गया।

कभी-कभी चुपचाप इंतज़ार करना काफी नहीं होता। परिवार को अपना अधिकार जताना पड़ता है—सवाल पूछने का, जवाब माँगने का और यह कहने का कि एक बार फिर देखिए।

जिस surgeon ने मेरी बहन का operation किया था, उसे छुट्टी पर होना था। संयोग से वह मेरी बहन के कमरे के ठीक ऊपर वाले कमरे में ठहरा हुआ था।

आज भी मुझे उसका नीचे आना याद है।

एक छोटे बच्चे की आँखों से वह दृश्य भूलना मुश्किल था—पजामा और robe पहने, गोल चश्मे लगाए surgeon नीचे आया।

उसने मेरी बहन को देखा।

फिर एक बहुत साधारण सवाल पूछा:

Urine output कितना है?

इतने doctors और consultants के बाद
मामला medicine की एक सबसे basic
observation पर वापस आ गया।

Urine output.

और उसी छोटी observation ने case की
दिशा बदल दी।

उसने पहचाना कि दवा के गंभीर reaction
के साथ acute renal failure हुआ था।

Furosemide दिया गया।

Urine वापस आने लगा।

और धीरे-धीरे मेरी बहन भी वापस आने लगी।

जिस बच्ची के बारे में हमें इतने गंभीर परिणाम के लिए तैयार किया जा रहा था, उसने आखिर अपनी आँखें खोलीं।

बाद में उसे hospital के garden में ले जाया गया।

इतने डर, consultations और uncertainty के बाद उसके पहले शब्द कितने साधारण और कितने खूबसूरत थे:

“Oh wow, कितने सुंदर फूल हैं।”

वह वहाँ थी।

वह फूल देख रही थी।

उन्हें महसूस कर रही थी।

वह वापस आ गई थी।

मैं छोटा था, लेकिन वह घटना मेरे अंदर
हमेशा के लिए रह गई।

बहुत knowledgeable लोगों ने उसे देखा
था। फिर भी turning point एक basic
चीज़ को notice करने से आया।

इसका मतलब यह नहीं कि बाकी
consultants अयोग्य थे या एक doctor
के पास कोई जादू था।

Lesson इससे कहीं सरल था:

Complexity के बीच basics को कभी मत भूलो।

और जब कुछ सही नहीं लग रहा हो,
patient या family को कभी-कभी बोलना पड़ता है।

Expertise का सम्मान करो।

लेकिन यह पूछने का अपना अधिकार मत छोड़ो:

क्या हमने सब कुछ check किया है?

गीला फर्श

कई साल बाद medicine ने मुझे वही lesson दूसरी दिशा से सिखाया।

अब मैं डरा हुआ छोटा भाई नहीं था।

मैं एक young doctor था, अपने बच्चे के जन्म का इंतज़ार कर रहा था।

Labor को आगे बढ़ाने के लिए oxytocin infusion चल रहा था और मैं पास की armchair में बैठा इंतज़ार कर रहा था।

इंतज़ार चलता रहा।

किसी समय मैंने नीचे रखी magazine उठाने के लिए हाथ बढ़ाया।

Floor गीला था।

बस इतनी-सी बात।

कोई alarm नहीं बजा था।

कोई machine नहीं बता रही थी कि कुछ गलत है।

सिर्फ गीला floor.

लेकिन floor गीला क्यों था?

मैंने पानी को trace किया।

वह IV stand की तरफ से आता दिखाई दिया।

मैं आगे देखता गया।

IV needle के puncture site की dressing भी गीली थी।

क्यों?

ध्यान से देखा।

जवाब लगभग हास्यास्पद रूप से simple था।

Connection ठीक से connected ही नहीं था।

जिस oxytocin के बारे में सब समझ रहे थे कि patient के अंदर जा रहा है, वह वहाँ पहुँच ही नहीं रहा था।

वह floor पर जा रहा था।

Q.E.D.

उस समय दवा, dose या patient की biology के बारे में कोई complicated theory बनाने की जरूरत नहीं थी।

Wet floor से शुरू करो।

पानी को trace करो।

IV तक पहुँचो।

और जवाब सामने था।

बाद में hospital administration के लोग बहुत चिंतित होकर हमारे पास आए और लगभग विनती करने लगे कि हम legal action न लें।

लेकिन मेरे लिए lasting lesson मुकदमे का नहीं था।

Lesson था:

Magazine.

Wet floor.

Wet dressing.

Connection.

हर observation छोटी थी।

मिलकर उन्होंने जवाब दे दिया।

यही medicine है।

और बहुत हद तक यही जिंदगी भी है।

कुछ सेकंड, पूरी जिंदगी

Rehabilitation medicine में young doctor के रूप में मैंने इसी lesson का एक और रूप देखा।

मैंने young लोगों में spinal cord injuries देखीं।

कभी कहानी hunting से शुरू हुई।

कभी skating से।

कभी speed से।

कभी seat belt या helmet न पहनने से।

घटना कुछ seconds की थी।

पर परिणाम पूरी जिंदगी का हो सकता था।

मैंने bullying, gangs, reckless driving
और कुछ पल के decisions के कारण
young lives को बेवजह बदलते भी
देखा।

इसीलिए एक बात मुझे हमेशा परेशान करती है:

“अभी जवान हैं। Enjoy करने दो। इनका समय है।”

बिल्कुल enjoy करने दो।

खेलें। घूमें। दोस्त बनाएँ। दुनिया देखें।
Reasonable risks लें। गलतियाँ करें और
उनसे सीखें।

लेकिन जवानी consequences से
immunity नहीं देती।

Spinal cord को नहीं पता कि इंसान
सिर्फ अठारह साल का है।

Physics को फर्क नहीं पड़ता कि वह
केवल मज़े कर रहा था।

Speeding car को नहीं पता कि driver
की पूरी जिंदगी उसके सामने पड़ी थी।

पाँच seconds का decision अगले पचास
साल बदल सकता है।

**Risk और needless risk एक ही चीज़
नहीं हैं।**

**Prevention Is Better Than
Cure**

इसीलिए समाज में कुछ नियम जरूरी हैं।

Prevention is better than cure.

A stitch in time saves nine.

Seat belt पहनो।

Helmet पहनो।

खतरनाक pollution को control करो।

Environment की रक्षा करो।

जहाँ गलती का परिणाम गंभीर हो सकता है, checklist इस्तेमाल करो।

इनका उद्देश्य जिंदगी से freedom या enjoyment निकालना नहीं है।

इनका उद्देश्य उन खतरों को कम करना है जिनके परिणाम हम पहले से जानते हैं।

Seat-belt laws इसलिए नहीं बने कि सरकार को driving पसंद नहीं।

Helmet rules इसलिए नहीं बने कि
किसी को motorcycles पसंद नहीं।

Pollution laws इसलिए नहीं हैं कि
factories कुछ बनाना बंद कर दें।

और checklists इसलिए नहीं हैं कि
professionals अपना काम भूल जाते हैं।

ये इसलिए हैं क्योंकि इंसान ने—कई बार
बहुत दर्दनाक तरीके से—सीखा है कि:

Prevention works.

जब potential नुकसान बहुत बड़ा हो और
prevention बहुत छोटा, तो prevention
को नज़रअंदाज़ करना मुश्किल हो जाता
है।

Seat belt click करो।

Helmet पहनो।

Line check करो।

Medication confirm करो।

हवा, पानी और धरती को अगली
generation के लिए सुरक्षित रखो।

Checklist follow करो।

छोटे preventive actions बड़े परिणाम
रोक सकते हैं।

Coordinated Reflex

Pilot को aircraft उड़ाने से पहले देखिए।

एक sequence होता है।

Check.

Confirm.

फिर अगला step.

अच्छी surgical team भी patient,
procedure, instruments, medicines
और equipment check करती है।

Dentist instrument माँगता है और
trained assistant जानता है कि आगे
क्या चाहिए।

मैं इसे कहता हूँ:

**Coordinated Reflex — तालमेल से
बनी सही प्रतिक्रिया।**

यह बिना सोचे काम करना नहीं है।

यह सही काम को इतने discipline से दोहराना है कि पूरी team सही sequence में लगभग naturally काम करने लगे।

इंसान भूलता है।

इंसान थकता है।

इंसान distract होता है।

इसलिए अच्छे systems हर बार किसी एक इंसान की memory पर निर्भर नहीं रहते।

Checklist judgment की जगह नहीं लेती।

**वह haste, distraction और
assumption से judgment की रक्षा
करती है।**

लेकिन moderation भी जरूरी है।

हर भूली हुई pencil के लिए checklist
की जरूरत नहीं।

सवाल है:

**Consequence कितना बड़ा हो सकता
है?**

अगर छोटी भूल का परिणाम गंभीर हो
सकता है, उसके आसपास system
बनाओ।

Think. Learn. Avoid.

गलतियाँ फिर भी होंगी।

हम इंसान हैं।

मकसद perfect होना नहीं है।

मकसद यह है कि जिस preventable mistake से हम सीख चुके हैं, उसे लापरवाही से बार-बार न दोहराएँ।

मेरा formula simple है:

Think.

Learn.

Avoid.

क्या हुआ—सोचो।

क्यों हुआ—सीखो।

फिर habit, rule, checklist या system बनाओ जिससे वही mistake दोबारा होने की संभावना कम हो।

मेरे पिता ने सवाल उठाया जब उनकी बेटी नहीं जाग रही थी।

सालों बाद एक wet floor ने मुझे सवाल उठाने पर मजबूर किया।

दोनों घटनाएँ किसी extraordinary discovery से शुरू नहीं हुईं।

वे शुरू हुईं क्योंकि किसी ने ऐसी चीज़ को ignore करने से इनकार किया जो समझ में नहीं आ रही थी।

यही सारे dots को जोड़ता है।

छोटी observation बड़े problem को
सामने ला सकती है।

छोटी prevention बड़े consequence को
रोक सकती है।

छोटा rule जिंदगी बचा सकता है।

छोटी checklist catastrophe रोक
सकती है।

इसलिए जब मैं सुनता हूँ:

**“अभी जवान हैं। Enjoy करने दो।
इनका समय है।”**

मेरा जवाब है:

बिल्कुल। Enjoy करने दो।

लेकिन जितना reasonably संभव हो, यह भी सुनिश्चित करें कि वे कल भी enjoy करने के लिए मौजूद और सक्षम हों।

छोटी बातों पर ध्यान दो।

कभी-कभी वही सब कुछ बदल देती हैं।

CHAPTER SEVEN

गुण और क्षमताएँ

हम सभी कुछ गुणों और क्षमताओं के साथ जन्म लेते हैं।

कुछ शारीरिक होते हैं, कुछ बौद्धिक। कुछ हमारे स्वभाव, परिवार, पालन-पोषण,

अवसरों और परिस्थितियों से आते हैं। कुछ को हम ईश्वर की देन कह सकते हैं और कुछ को प्रकृति की। उनका स्रोत जो भी हो, वे उन पत्तों का हिस्सा हैं जो जीवन की शुरुआत में हमारे हाथ में आते हैं।

मैं लंबा हूँ। मेरा शरीर मजबूत है। पढ़ाई हमेशा मेरी ताकत रही है। मैं अलग-अलग और अमूर्त विचारों के बीच संबंध देखकर उन्हें एक साथ जोड़ सकता हूँ। ये मेरी कुछ क्षमताएँ हैं। मैंने इन सभी को अर्जित नहीं किया और न ही मैंने इन्हें चुना। ये बस उन पत्तों में शामिल थे जो मुझे मिले।

गलती तब होती है जब हम अपना जीवन दूसरों के पत्ते देखते हुए बिता देते हैं।

काश मैं अधिक लंबा होता। अधिक सुंदर होता। अधिक शक्तिशाली या अधिक बुद्धिमान होता। काश मेरा जन्म किसी दूसरे परिवार या दूसरे देश में हुआ होता।

लेकिन इच्छा करने से मेज़ पर पड़े पत्ते नहीं बदलते।

सही प्रश्न यह है:

मेरे पास जो पत्ते हैं, मैं उनसे क्या कर सकता हूँ?

इसका अर्थ यह नहीं है कि हर व्यक्ति जीवन की शुरुआत एक ही स्थान से करता है। ऐसा बिल्कुल नहीं है।

धनवान परिवार में जन्मे बच्चे को ऐसे अवसर मिल सकते हैं जो गरीब परिवार में जन्मे बच्चे को न मिलें। स्थिर परिवार कुछ ऐसे लाभ दे सकता है जो अस्थिर परिवार नहीं दे पाता। देशों में शिक्षा, कानून, सुरक्षा, आधारभूत सुविधाओं और सामाजिक प्रगति के अवसर अलग-अलग होते हैं। परिवार में जन्म का क्रम और माता-पिता की अपेक्षाएँ भी हमारे विकास को प्रभावित कर सकती हैं।

इन वास्तविकताओं को नकारने का कोई लाभ नहीं।

लेकिन परिस्थितियों को हमेशा बहाना बना लेना भी उचित नहीं।

विशेष रूप से जाति या त्वचा के रंग से किसी व्यक्ति की बुद्धि, चरित्र, प्रतिभा या क्षमता का अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए। गुण व्यक्ति के होते हैं। शक्तियाँ और कमजोरियाँ व्यक्ति की होती हैं। रूढ़ धारणाएँ हमारे सामने खड़े वास्तविक व्यक्ति के बारे में बहुत कम बताती हैं।

इसलिए स्वयं को ईमानदारी से देखिए।

आप क्या अच्छा करते हैं?

आपके लिए क्या स्वाभाविक है?

अभ्यास से आप क्या बेहतर कर सकते हैं?

जहाँ आप हैं, वहाँ कौन-से अवसर उपलब्ध हैं?

और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न:

आप उनके साथ क्या करने वाले हैं?

संदर्भ महत्वपूर्ण है

किसी गुण या योग्यता का मूल्य उस वातावरण पर भी निर्भर करता है जिसमें उसका उपयोग किया जा रहा है।

एक योग्यता जो एक देश में अनेक दरवाज़े खोलती है, दूसरे देश में उतनी उपयोगी न हो। विश्व-प्रसिद्ध विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा बहुत बड़ी हो सकती है, लेकिन किसी विशेष देश में काम करने वाले व्यक्ति के लिए वहाँ का प्रमुख स्थानीय

विश्वविद्यालय अधिक उपयोगी संबंध और अवसर दे सकता है।

हर परिस्थिति में एक ही विकल्प श्रेष्ठ नहीं होता।

संदर्भ महत्वपूर्ण है।

दुनिया भी बदल चुकी है। पहले की तुलना में आज अवसरों की दुनिया कहीं अधिक समतल हुई है। मुँह में चाँदी का चम्मच लेकर पैदा होना आज भी लाभ देता है; इसे नकारना मूर्खता होगी। लेकिन जन्म अब उतना निर्णायक नहीं है जितना राजाओं, सामंतों, विरासत में मिलने वाली उपाधियों और कठोर सामाजिक वर्गों के समय हुआ करता था।

शिक्षा, तकनीक, संचार और सूचना तक पहुँच ने ऐसे दरवाज़े खोल दिए हैं जिनकी पिछली पीढ़ियाँ कल्पना भी नहीं कर सकती थीं।

खेल का मैदान अभी भी पूरी तरह बराबर नहीं है, लेकिन अब अधिक लोग उस मैदान तक पहुँच सकते हैं।

हमें विरासत में मिले लाभों को नकारना भी नहीं चाहिए और उन्हें भाग्य का अंतिम निर्णय भी नहीं मानना चाहिए।
परिस्थितियाँ यह प्रभावित कर सकती हैं कि आप कहाँ से शुरू करते हैं; वे आवश्यक नहीं कि यह भी तय करें कि आप कहाँ समाप्त करेंगे।

तुलना भी तभी उपयोगी है जब हम समान चीज़ों की तुलना करें।

यदि कोई मशीन सौ मीटर दुनिया के सबसे तेज मनुष्य से भी जल्दी दौड़ती है, तो यह इंजीनियरिंग की अद्भुत उपलब्धि है। इससे मानव धावक की उपलब्धि कम नहीं हो जाती।

कार मुझसे तेज दौड़ सकती है।

चीता मुझसे तेज दौड़ सकता है।

इससे मैं खराब धावक नहीं बन जाता।

संतरे की तुलना संतरे से और सेब की तुलना सेब से कीजिए।

फिर पूछिए:

मेरे गुणों और मेरी परिस्थितियों को देखते हुए, मैं अपनी क्षमता का कितना विकास कर रहा हूँ?

केवल अच्छा होना हमेशा पर्याप्त नहीं

एक और कठोर वास्तविकता है।

कभी-कभी आपके साथ प्रतिस्पर्धा करने वाला हर व्यक्ति अच्छा होता है।

एक श्रेष्ठ विश्वविद्यालय में हजारों ऐसे विद्यार्थी आवेदन कर सकते हैं जिनके अंक उत्कृष्ट हों। एक नौकरी के लिए दर्जनों योग्य उम्मीदवार हो सकते हैं।

ऐसी स्थिति में केवल योग्य होना आपको
अलग नहीं करता।

तब प्रश्न बनता है:

आप ही क्यों?

आपने अपनी क्षमताओं के साथ ऐसा क्या
किया जो आपको भीड़ से अलग करता है?

इसी कारण मैंने अपने बच्चों को केवल
अच्छे अंक प्राप्त करने के बजाय अन्य
क्षमताएँ विकसित करने के लिए भी
प्रोत्साहित किया—तकनीक, नेटवर्किंग,
वाद-विवाद, पेशेवर रुचियाँ और समाज में
योगदान।

ये केवल आवेदन-पत्र सजाने के लिए नहीं थे। इनसे एक अधिक संपूर्ण व्यक्ति विकसित होता है।

अंक महत्वपूर्ण हैं। कौशल महत्वपूर्ण हैं।
उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण हैं।

लेकिन चरित्र भी महत्वपूर्ण है।

आपने क्या योगदान दिया?

आपने किसकी सहायता की?

आपको मिले अवसरों का आपने क्या किया?

यही विचार विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों में बार-बार दिखाई देता है। उनकी परंपराएँ अलग हो सकती हैं, लेकिन सिद्धांत बहुत

समान है: जब हमारे पास पर्याप्त हो, तब हमें उन लोगों को नहीं भूलना चाहिए जिनके पास कम है।

सिख धर्म में लंगर इसका सुंदर उदाहरण है, जहाँ धन और सामाजिक स्थिति की परवाह किए बिना लोग साथ बैठकर भोजन करते हैं। इस्लाम दान की शिक्षा देता है। ईसाई धर्म भी जरूरतमंदों की सहायता पर बहुत बल देता है।

अलग परंपराएँ, अलग तरीके, लेकिन एक गहरा मानवीय सिद्धांत:

जब हमें कुछ मिलता है, तो हमें देने का अवसर भी मिलता है।

अपने पत्ते खेलिए

जीवन में भाग्य की भी भूमिका है।

कुछ लोग बहुत मेहनत करते हैं और फिर भी कठिन परिस्थितियों का सामना करते हैं। कुछ लोगों को ऐसे अवसर मिल जाते हैं जिन्हें बनाने में उनका बहुत कम योगदान था।

अधिकांश जीवन मेहनत, परिस्थिति, अच्छे भाग्य, बुरे भाग्य, क्षमता, गलतियों और निर्णयों का मिश्रण होते हैं।

इनमें से किसी को नकारने में बुद्धिमानी नहीं है।

और इनसे स्वयं को असहाय बना लेने में
तो और भी कम।

आप पूरी जिंदगी यह पूछते हुए नहीं बिता
सकते कि दूसरे व्यक्ति को अलग पत्ते क्यों
मिले।

अपने पत्ते खेलिए।

अपनी ताकत विकसित कीजिए।
कमजोरियों पर काम कीजिए। अपने
वातावरण को समझिए। अवसर खोजिए।
जहाँ संभव हो, अवसर बनाइए। नए
कौशल सीखिए। मेहनत और चरित्र से
स्वयं को अलग पहचान दीजिए।

और परिस्थितियाँ बदलें तो स्वयं को भी बदलिए।

तकनीक इसका अच्छा उदाहरण है। कोई नया उपकरण ऐसी क्षमताएँ रख सकता है जो किसी अकेले मनुष्य के लिए संभव नहीं। इसका अर्थ यह नहीं कि मानव क्षमता समाप्त हो गई।

बुद्धिमानी यह है कि हम उस उपकरण का उपयोग करना सीखें।

कैलकुलेटर ने गणित को निरर्थक नहीं बनाया। बिजली ने मानव प्रतिभा को समाप्त नहीं किया। कंप्यूटर ने सोचने की आवश्यकता समाप्त नहीं की।

उपकरण संभावनाएँ बदलते हैं।

मनुष्य तय करता है कि उन संभावनाओं का उपयोग कैसे किया जाए।

हमारे गुण भी ऐसे ही हैं।

वे कच्चा माल हैं, तैयार उत्पाद नहीं।

प्राकृतिक प्रतिभा यदि विकसित न की जाए तो बहुत कम कर सकती है। कम प्राकृतिक प्रतिभा वाला व्यक्ति असाधारण अनुशासन से कहीं आगे जा सकता है। मेहनत के बिना अवसर बर्बाद हो सकता है। अवसर के बिना मेहनत को धैर्य, अनुकूलन या दूसरा रास्ता खोजना पड़ सकता है।

जीवन का कोई एक सूत्र नहीं है, क्योंकि
हर व्यक्ति के हाथ में एक जैसे पत्ते नहीं हैं।

और शायद यही पूरी बात है।

गुण कुछ पत्ते तय करते हैं।

परिस्थितियाँ कुछ और पत्ते बाँटती हैं।

मेहनत तय करती है कि आप उन्हें कैसे
खेलते हैं।

चरित्र तय करता है कि जीतने के बाद
आप क्या करते हैं।

आप यह नहीं चुन सकते कि जीवन
आपको हर बार कौन-सा पत्ता देगा।

लेकिन आप यह चुन सकते हैं कि अपने
पत्तों को कितनी अच्छी तरह खेलेंगे।

और जब आपका हाथ अच्छा चले, तब
एक और चुनाव आपके सामने होता है:

क्या सफलता केवल आपकी होगी?

या आप मेज़ के उस पार हाथ बढ़ाकर
किसी और को भी उसके पते बेहतर ढंग से
खेलने में सहायता करेंगे?

CHAPTER EIGHT

तथ्यों पर भरोसा, अनजान का सामना बिना अंधविश्वास के

ज़िंदगी में बहुत कुछ सफ़ेद या काला नहीं
होता। बहुत बड़ा हिस्सा धूसर होता है।

सदियों तक इंसान बहुत-सी बातें इसलिए करता रहा क्योंकि उससे पहले वाले भी वही करते आए थे। दादी ने माँ को बताया, पिता ने बेटे को बताया, और परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती गई।

कुछ परंपराओं में गहरी समझ थी। कुछ केवल इसलिए बची रहीं क्योंकि हमारे पास उनसे बेहतर उत्तर नहीं था।

विज्ञान ने एक नया सवाल सिखाया:

**“हमेशा से ऐसा होता आया है” के बजाय
— “इसका प्रमाण क्या है?”**

चिकित्सा इसका बहुत अच्छा उदाहरण है।

एक समय था जब अपेंडिसाइटिस
जानलेवा हो सकता था। दाँत का दर्द
गंभीर समस्या बन सकता था। ऑपरेशन में
दर्द, संक्रमण और रक्तस्राव बड़ी सीमाएँ
थे।

फिर ज्ञान बढ़ा।

एनेस्थीसिया ने सर्जरी बदल दी।
एंटीसेप्सिस और एंटीबायोटिक्स ने
संक्रमण से लड़ने का तरीका बदल दिया।
आधुनिक इमेजिंग ने शरीर के अंदर देखने
की क्षमता दी। दंत चिकित्सा केवल दाँत
निकालने से आगे बढ़कर दाँत बचाने और
सुधारने तक पहुँची।

ये परिवर्तन केवल विश्वास से नहीं आए।

ये आए देखने, जाँचने, गलती करने,
गलती सुधारने और प्रमाण इकट्ठा करने
से।

यही बात उद्योग पर भी लागू होती है।

आज रसायन विज्ञान, भौतिकी, जीव
विज्ञान, गणित और इंजीनियरिंग के
आधार पर हम ऐसी चीज़ें बना सकते हैं
जिनकी पिछली पीढ़ियाँ कल्पना भी नहीं
कर सकती थीं।

IVF ने उन परिवारों को संतान का अवसर
दिया जिन्हें कभी यह संभव नहीं लगता
था।

1996 में डॉली नाम की भेड़ ने दिखाया कि एक वयस्क कोशिका से स्तनधारी का क्लोन बनाया जा सकता है।

लेकिन हर वैज्ञानिक उपलब्धि के साथ एक दूसरा सवाल आता है:

अगर हम कुछ कर सकते हैं, तो क्या इसका मतलब है कि हमें वह करना भी चाहिए?

यहीं नैतिकता आती है।

परमाणु विज्ञान बिजली भी बना सकता है और विनाशकारी हथियार भी।

आनुवंशिकी बीमारी कम कर सकती है, लेकिन मानव जीवन में बदलाव की सीमा

कहाँ होनी चाहिए—यह एक अलग प्रश्न है।

विज्ञान हमें बता सकता है कि **क्या संभव है**।

लेकिन केवल विज्ञान यह तय नहीं कर सकता कि **क्या उचित है**।

इसके लिए नैतिकता चाहिए।

जो हमें मालूम है

कुछ क्षेत्रों में प्रमाण बहुत मजबूत है।

अपेंडिसाइटिस का निदान और उपचार किया जा सकता है। बहुत-से जीवाणु संक्रमणों का उचित एंटीबायोटिक से

इलाज किया जा सकता है। टूटी हुई हड्डी को देखा, सही स्थिति में रखा और स्थिर किया जा सकता है।

जब बीमारी का कारण, प्रक्रिया और उपचार अच्छी तरह समझे जाते हैं, तब चिकित्सा अत्यंत प्रभावशाली हो सकती है।

यह है:

Known — जो हमें मालूम है।

लेकिन कहानी यहीं समाप्त नहीं होती।

इलाज और नियंत्रण

हाई ब्लड प्रेशर को देखिए।

हम रक्तचाप को बहुत प्रभावी ढंग से कम कर सकते हैं, लेकिन अधिकांश लोगों में हम उस प्रवृत्ति को **नियंत्रित** कर रहे होते हैं; उसे हमेशा के लिए समाप्त नहीं कर रहे होते।

डायबिटीज़ और बहुत-सी पुरानी बीमारियों में भी यही अंतर दिखाई देता है।

Treatment और control एक ही चीज़ नहीं हैं।

और जहाँ नियंत्रण है लेकिन पूर्ण इलाज नहीं, वहीं आगे की खोज का रास्ता खुलता है।

सिकल-सेल बीमारी अफ्रीका के कई हिस्सों में महत्वपूर्ण है। थैलेसीमिया एशिया सहित कई आबादियों में पाया जाता है। आज इनके आनुवंशिक आधार के बारे में हमारी समझ काफी अच्छी है। कैरियर स्क्रीनिंग और जेनेटिक काउंसलिंग गंभीर बीमारी के जोखिम को कम करने में मदद कर सकती हैं।

हमारे पास इस बात के भी मजबूत प्रमाण हैं कि sickle-cell trait गंभीर *Plasmodium falciparum* malaria से कुछ सुरक्षा देता है।

प्रकृति कभी-कभी ऐसी जटिल व्यवस्था बनाती है जिसमें एक आनुवंशिक विशेषता

एक परिस्थिति में नुकसानदेह और दूसरी में लाभकारी हो सकती है।

यही कारण है कि प्रमाण महत्वपूर्ण है।

वह अनुमान को ज्ञान में बदलता है।

शरीर केवल वह नहीं जो दिखाई देता है

चिकित्सा ने anatomy को देखने में असाधारण प्रगति की है।

CT, MRI और दूसरी तकनीकों से हम शरीर के अंदर बहुत कुछ देख सकते हैं।

लेकिन शरीर की संरचना जानना पूरी कहानी नहीं है।

अगला बड़ा प्रश्न है:

यह काम कैसे करता है?

खून की एक बूंद बाहर से केवल लाल दिखाई देती है।

लेकिन उसी बूंद में कोशिकाएँ, प्रोटीन, हार्मोन, इलेक्ट्रोलाइट्स, एंटीबॉडीज़, आनुवंशिक पदार्थ और अनगिनत संदेश चल रहे होते हैं।

एक silicon chip बाहर से छोटी-सी wafer लगती है।

लेकिन उसी के अंदर अरबों switching events आधुनिक कंप्यूटर और AI को संभव बनाते हैं।

सादगी के पीछे बहुत बड़ी जटिलता छिपी हो सकती है।

मानव शरीर भी ऐसा ही है।

कौन-सा hormone किस receptor को प्रभावित करता है, कौन-सा gene किस protein को नियंत्रित करता है, और ये सारे systems एक-दूसरे से कैसे बात करते हैं—शायद भविष्य की चिकित्सा के कई उत्तर यहीं छिपे हैं।

शायद

अब हम बीच के क्षेत्र में आते हैं।

यहाँ हमारे पास पूरा उत्तर नहीं है।

हमारे पास hypothesis हो सकती है।
Association हो सकता है। Probability
हो सकती है। शुरुआती evidence हो
सकता है।

लेकिन:

Possibility, fact नहीं है।

Hypothesis, proof नहीं है।

**Association, causation ज़रूरी नहीं
है।**

जब प्रमाण केवल शायद कहता है, तो हमें
भी शायद कहना चाहिए।

यह कमजोरी नहीं है।

यह ईमानदारी है।

अनजान

फिर वह क्षेत्र आता है जहाँ हमारे पास उत्तर नहीं होता।

बीमारी अचानक आ सकती है। दुर्घटना हो सकती है। आर्थिक परिस्थिति बदल सकती है। रिश्ते टूट सकते हैं। कभी-कभी जीवन ऐसा मोड़ लेता है जिस पर हमारा नियंत्रण बहुत कम होता है।

ज़िंदगी सीधी रेखा नहीं है।

वह ECG जैसी है—ऊपर, नीचे, परिवर्तन।

एक बिल्कुल सपाट ECG जीवन नहीं दिखाती।

समस्या तब शुरू होती है जब इंसान उस चीज़ पर नियंत्रण चाहता है जिस पर उसका नियंत्रण है ही नहीं।

यहीं हम उत्तर तलाशते हैं।

अलग-अलग संस्कृतियों में लोग पत्थर पहनते हैं, ताबीज़ रखते हैं, धार्मिक या पवित्र tattoo बनवाते हैं, गुरु के पास जाते हैं, पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं और ऐसी रस्में निभाते हैं जिनसे उन्हें लगता है कि अनिश्चित भविष्य प्रभावित हो सकता है।

अगर किसी को इनमें शांति मिलती है, तो उस शांति का अपना मूल्य हो सकता है।

लेकिन:

शांति प्रमाण नहीं है।

अगर कोई कहता है, “इससे मुझे मदद मिली,” वह उसका अनुभव है।

समस्या तब आती है जब कोई कहता है:

“यह सत्य है क्योंकि मैं कह रहा हूँ। मानो या मत मानो।”

वहीं विश्वास अंधविश्वास बन सकता है।

और वहीं सवाल बंद नहीं—शुरू होने चाहिए।

प्रमाण क्या है?

क्या कोई दूसरा कारण हो सकता है?

जब वही तरीका काम नहीं किया, उन
मामलों का क्या हुआ?

क्या संयोग या probability परिणाम
समझा सकती है?

और अंत में:

क्या हम वास्तव में जानते हैं?

कभी-कभी सही उत्तर होता है:

नहीं।

नियंत्रण और अनजान

इंसान नियंत्रण चाहता है।

जब समस्या समझ में आती है और हमारे पास कुछ करने का रास्ता होता है, तो अनिश्चितता कम होती है।

जब नियंत्रण चला जाता है, अनजान का डर बढ़ता है।

और उस खाली जगह को इंसान किसी न किसी चीज़ से भरना चाहता है।

कभी विज्ञान से।

कभी परिवार और दोस्तों से।

कभी समाज से।

कभी दर्शन या आध्यात्मिकता से।

और कभी ऐसे विश्वास से जिसके पीछे
पर्याप्त प्रमाण नहीं होता।

अर्थ या सांत्वना तलाशना गलत नहीं है।

गलती तब होती है जब हम **सांत्वना को
सत्य का प्रमाण समझ लेते हैं।**

जब कोई परिस्थिति हमारे नियंत्रण से
बाहर हो, तब शायद हमें पूछना चाहिए:

हम वास्तव में क्या जानते हैं?

हमारे पास क्या प्रमाण है?

दूसरी संभावनाएँ क्या हैं?

अभी भी हमारे नियंत्रण में क्या है?

कौन हमारी मदद कर सकता है?

और किस जगह हमें स्वीकार करना चाहिए:

“मुझे नहीं मालूम।”

ये तीन शब्द कहना कठिन हो सकता है।

लेकिन कभी-कभी यही सबसे ईमानदार उत्तर है।

Velcro Wall

हमें घमंड और अंधविश्वास में से किसी एक को चुनने की आवश्यकता नहीं है।

जहाँ प्रमाण मजबूत है, वहाँ विश्वास के साथ आगे बढ़िए।

जहाँ प्रमाण अधूरा है, वहाँ शायद कहने की हिम्मत रखिए।

और जहाँ उत्तर नहीं है, वहाँ अनजान को स्वीकार करने की विनम्रता रखिए।

विज्ञान की शक्ति इसी में है कि वह स्वयं को सुधार सकता है।

प्रमाण तभी मानवता के काम आता है जब उसके साथ नैतिकता हो।

और हर अनजान जगह को किसी बनाए हुए उत्तर से भरना आवश्यक नहीं है।

शायद जीवन को देखने का सरल तरीका यही है:

जो मालूम है, उसे जानिए।
जो शायद है, उसकी जाँच कीजिए।
जो अनजान है, उसका सम्मान कीजिए।
जो नियंत्रण में है, उसे संभालिए।
और “मुझे नहीं मालूम” कहने से कभी
मत डरिए।

CHAPTER NINE

प्यार, परवाह और बिछड़ना

हम परवाह करते हैं क्योंकि हम प्यार करते हैं।

जब हमारा कोई अपना बीमार होता है, तो हम उसके लिए हर संभव कोशिश करना चाहते हैं। एक और डॉक्टर, एक और इलाज, एक और जवाब ढूँढते हैं। हम उसकी देखभाल करते हैं, उसकी चिंता करते हैं, उसे बचाने की कोशिश करते हैं— और कभी-कभी हमें लगने लगता है कि अगर हम पर्याप्त प्यार और परवाह करें, तो शायद परिणाम भी हमारे हाथ में होगा।

लेकिन ऐसा नहीं है।

चिकित्सा की भी एक सीमा है। और इंसान की भी।

अगर केवल प्यार और परवाह किसी को खोने से बचा सकते, तो आज हमारे माता-पिता हमारे साथ होते।

जो चले जाते हैं, उनके पीछे रह जाने वाले लोग यादें, सवाल और कभी-कभी अपराधबोध लेकर जीते हैं।

क्या मैं कुछ और कर सकता था?
क्या मुझे पहले समझ जाना चाहिए था?
अगर मैंने कोई दूसरा निर्णय लिया होता तो?

इन सवालों का कोई स्वाभाविक अंत नहीं है। मन हमेशा एक और “अगर ऐसा होता तो...” पैदा कर सकता है।

यहीं स्वीकार करना सीखना पड़ता है।

स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं कि हमारा
प्यार कम था। इसका अर्थ यह भी नहीं कि
हम उन्हें याद करना छोड़ दें। इसका अर्थ
केवल इतना है कि हम समझें—क्या हमारे
हाथ में था और क्या नहीं।

पीछे मुड़कर **सीखिए**, खुद को सज़ा देने के
लिए नहीं।

अगर कुछ बेहतर किया जा सकता था, तो
उससे सीखिए। अगर उसी अनुभव से
किसी और को बचाया जा सकता है, तो
उसे बचाने की कोशिश कीजिए। अपने
अनुभव को आपको अधिक समझदार और

उन लोगों के लिए अधिक उपयोगी बनाने
दीजिए जो आज भी आपके साथ हैं।

लेकिन पूरी ज़िंदगी अपराधबोध का पीछा
मत कीजिए।

Velcro Wall

दिल खोलकर प्यार कीजिए।

जब तक अवसर है, परवाह कीजिए।

जो आपके बस में है, पूरी ईमानदारी से
कीजिए।

स्वीकार कीजिए कि प्यार किसी परिणाम
की गारंटी नहीं दे सकता।

बिछड़ने से सीखिए।

जिसे रोका जा सकता है, उसे रोकने की
कोशिश कीजिए।

सीख को आगे लेकर चलिए—
अपराधबोध को नहीं।

और जीते रहिए।

CHAPTER TEN

सीखा तो क्या सीखा?

औज़ार और उनका इस्तेमाल

Auzaar aur Unka Istemaal

इंसान और औज़ार का रिश्ता नया नहीं है।

कभी पत्थर औज़ार था, फिर पहिया आया। चाकू, हथौड़ा, छापाखाना, गाड़ी, टेलीफोन, कंप्यूटर—और आज Artificial Intelligence.

हाल ही में मैंने एक खबर पढ़ी कि brain tumour निकालने की surgery में AI की मदद ली गई।

पहली नज़र में ध्यान AI पर जाता है।

लेकिन असली सवाल AI नहीं है।

औज़ार क्या है, इससे पहले यह पूछना चाहिए कि उसे इस्तेमाल कौन कर रहा है।

कौन इस्तेमाल कर रहा है?

कैसे कर रहा है?

क्यों कर रहा है?

कहाँ कर रहा है?

और कब उसका इस्तेमाल उचित है?

AI अपने आप neurosurgeon नहीं बन गया। उसके पीछे डॉक्टर की पढ़ाई थी, वर्षों की training थी, medical knowledge था, अनुभव था और सबसे बढ़कर निर्णय लेने वाला इंसान था।

AI एक नया साधन था।

बस।

हम रोज़मर्रा की जिंदगी में भी यही बात देखते हैं।

एक चाकू रसोई में सब्ज़ी काट सकता है। एक प्रशिक्षित surgeon के हाथ में surgical instrument शरीर के उपचार का माध्यम बन सकता है। औज़ार स्वयं निर्णय नहीं लेता। परिणाम उस व्यक्ति के ज्ञान, उद्देश्य और इस्तेमाल पर निर्भर करता है जिसके हाथ में वह है।

गाड़ी को ही देख लीजिए।

तेज़ गाड़ी बनाना इंसान की उपलब्धि है।
उससे समय बचता है, दूरी कम लगती है
और जीवन आसान होता है। लेकिन उसी
speed के साथ खतरा भी आता है।

तो क्या हमने गाड़ियाँ बनाना बंद कर
दिया?

नहीं।

हमने सड़कें सुधारीं। Traffic rules
बनाए। Seat belts आए। बेहतर
brakes आए। Driver training आई।
अनुभव से नई safety systems आती
गईं।

यानी समाधान औज़ार से डरना नहीं था।

समाधान था औज़ार को समझना।

उसकी क्षमता जानो।

उसका लाभ समझो।

उसकी सीमा पहचानो।

उसका खतरा देखो।

सुरक्षा के उपाय बनाओ।

नतीजा देखो।

और आवश्यकता पड़े तो तरीका बदलो।

AI के साथ भी यही करना होगा।

अगर उसका इस्तेमाल केवल सवाल पूछकर जवाब लेने तक सीमित है, तो वह एक बहुत सुविधाजनक search engine बन सकता है। लेकिन अगर

उसकी क्षमताओं को समझा जाए, तो वही technology विचारों को परखने, जानकारी व्यवस्थित करने, अलग-अलग दृष्टिकोण देखने और विशेषज्ञों की सहायता करने का साधन बन सकती है।

लेकिन शक्ति बढ़ती है तो जिम्मेदारी भी बढ़ती है।

गलत जानकारी, जरूरत से ज्यादा भरोसा, निर्भरता, privacy और misuse जैसे खतरे केवल इसलिए गायब नहीं होते जाते क्योंकि technology नई और प्रभावशाली है।

जिस चीज़ को हमने समझा ही नहीं,
उसके लिए समझदारी से सुरक्षा कैसे
बनाएंगे?

और जिस औज़ार की शक्ति देखकर हम
मोहित हो जाएँ, उसकी कमियाँ कैसे
पहचानेंगे?

इंसान की कहानी हमेशा से औज़ारों के
साथ आगे बढ़ी है।

औज़ार बदलते रहे हैं।

लेकिन सवाल वही रहे:

कौन?

कैसे?

क्यों?

कहाँ?

कब?

औज़ार हमें क्षमता देता है।

उस क्षमता का हम क्या करते हैं—वही
असली कहानी है।

CHAPTER ELEVEN

सीखा तो क्या सीखा?

सफ़र और संस्कृति

Safar aur Sanskriti

सफ़र का मतलब केवल जगह बदलना
नहीं है।

कितने देश देखे? कितनी तस्वीरें लीं?
कितने मंदिर, गुरुद्वारे, चर्च या ऐतिहासिक
स्थान देखे?

ये सब यादें हो सकती हैं।

लेकिन देखना और समझना एक बात नहीं
है।

Chiang Rai की यात्रा ने मुझे यह बात
फिर याद दिलाई।

वहाँ White Temple है, Blue Temple है
और Gold Temple है। पहली नज़र रंगों
पर जाती है। इमारतें इतनी आकर्षक हैं कि
स्वाभाविक रूप से कैमरा निकल आता है।

लेकिन अगर तस्वीर लेकर आगे बढ़ गए,
तो हमने क्या देखा?

इमारत?

या उसके पीछे की सोच?

White Temple में कुछ दृश्य पहली नज़र
में विचलित कर सकते हैं। बहुत-से हाथ
ऊपर की ओर उठे हुए दिखाई देते हैं। फिर
सामने एक अत्यंत सुंदर सफ़ेद मंदिर आता
है—इतनी बारीक कारीगरी कि नज़र रुक
जाती है।

अगर अर्थ न समझें, तो दोनों चीज़ें एक-
दूसरे से बिल्कुल अलग लग सकती हैं।

लेकिन जैसे ही हम पूछते हैं—**क्यों?**—
दृश्य बदलने लगता है।

ये हाथ क्यों?

सफ़ेद रंग क्यों?

इतनी सजावट क्यों?

कलाकार क्या कहना चाहता था?

अब हम केवल मंदिर नहीं देख रहे।

हम उसे समझने की कोशिश कर रहे हैं।

यही बात मुझे Amritsar के Golden
Temple के बारे में सोचने पर मजबूर
करती है।

सोना अद्भुत है। पानी में उसका प्रतिबिंब
और भी सुंदर लगता है।

लेकिन Golden Temple केवल सोने की
इमारत नहीं है।

वहाँ प्रार्थना है। सेवा है। संगत है। और
लंगर है—जहाँ किसी व्यक्ति की हैसियत
पूछे बिना भोजन दिया जाता है।

अगर केवल सोना देखा और चले गए, तो
शायद हमने सबसे महत्वपूर्ण चीज़ देखी ही
नहीं।

इतिहास एक और बात सिखाता है।

किसी स्थान, संस्था या धर्म का मूल विचार
और बाद में उसके नाम पर काम करने वाले
लोगों के कार्य हमेशा एक जैसे नहीं होते।

किरदार मायने रखते हैं।

किसी एक व्यक्ति के काम से पूरी संस्कृति
को समझना उतना ही गलत है जितना
किसी एक बुरे अनुभव से पूरे देश को
परिभाषित करना।

इसीलिए यात्रा में जिज्ञासा जरूरी है।

कुछ सुंदर लगे—पूछो क्यों।

कुछ अजीब लगे—पूछो क्यों।

कुछ पसंद न आए—फैसला सुनाने से
पहले समझने की कोशिश करो।

समझने का मतलब सहमत होना नहीं है।

दूसरी संस्कृति को समझकर भी हम कह सकते हैं, “यह मेरे लिए नहीं है।”

और किसी विश्वास को अपनाए बिना उसकी कला, इतिहास, अनुशासन या सामाजिक व्यवस्था से सीख सकते हैं।

यहीं सफ़र शिक्षा बन जाता है।

हर समाज ने जीवन जीने के अपने तरीके विकसित किए हैं। कुछ अच्छे हैं। कुछ असफल हुए। कुछ आज भी उपयोगी हैं और कुछ केवल आदत बनकर रह गए हैं।

यात्री के पास एक अनोखा अवसर है।

वह देख सकता है और चुन सकता है।

क्या अच्छा है?
क्यों अच्छा है?
मैं इससे क्या सीख सकता हूँ?
क्या अपनाना चाहिए?
और कौन-सी गलती दोहरानी नहीं
चाहिए?

सफ़र का उद्देश्य केवल तस्वीरों का संग्रह
बढ़ाना नहीं होना चाहिए।

दृष्टिकोण बढ़ना चाहिए।

देखो।

समझो।

सीखो।

जो उपयोगी हो उसे अपनाओ।

जो उपयोगी न हो उसे छोड़ दो।

अगर सफ़र के बाद केवल जगह बदली, तो हमने यात्रा की।

अगर सोच बदली, तो हमने कुछ सीखा।

CHAPTER TWELVE

सीखा तो क्या सीखा?

कानून और उनका पालन

Kanoon aur Unka Palan

हर देश में कानून होते हैं।

कई देशों के संविधान बहुत अच्छे लिखे गए हैं। Traffic rules होते हैं। Building codes होते हैं। Tax laws होते हैं।

भ्रष्टाचार रोकने के कानून होते हैं। नागरिक अधिकार लिखे होते हैं।

लेकिन कानून लिख देना और कानून को लागू करना दो अलग बातें हैं।

Driving इसका बहुत सरल उदाहरण है।

Road पर speed limit लिखी हुई है।

Driver नियम जानता है। गाड़ी उससे तेज़ चल सकती है।

फिर भी व्यवहार किस चीज़ से बदलता है?

अक्सर sign से नहीं।

इस उम्मीद से कि नियम तोड़ने पर परिणाम होगा।

America में rear-view mirror में
police की blue light दिख जाए, तो
driver का व्यवहार एक पल में बदल
सकता है।

Speed कम।

ध्यान पूरा।

हर movement सोच-समझकर।

कानून उस समय नया नहीं बना।

बदला केवल यह कि अब consequence
सामने दिखाई देने लगा।

यही फर्क महत्वपूर्ण है।

अगर लोगों को पता हो कि नियम हैं लेकिन उसका पालन शायद ही कभी करवाया जाएगा, तो धीरे-धीरे नियम की ताकत कम हो जाती है।

लेकिन जहाँ enforcement नियमित और भरोसेमंद हो, वहाँ लोग police के सामने आने से पहले ही अपना व्यवहार बदल लेते हैं।

यह केवल traffic की बात नहीं है।

Building code लिख देने से building सुरक्षित नहीं हो जाती अगर violations को नजरअंदाज किया जाए।

Tax law लिख देने से tax system
निष्पक्ष नहीं हो जाता अगर कुछ लोग
उससे बच निकलें।

Corruption के खिलाफ कानून लिखने से
corruption खत्म नहीं होता अगर
शक्तिशाली लोगों पर वही नियम लागू न
हों।

संविधान में अधिकार लिख देना भी पर्याप्त
नहीं है अगर उन्हें बचाने वाली संस्थाएँ
कमजोर हों।

इसलिए किसी देश के legal system को
केवल उसके लिखे हुए कानूनों से नहीं
परखा जा सकता।

देखना यह होगा:

क्या कानून लागू होता है?

क्या सब पर एक जैसा लागू होता है?

क्या enforcement नियमित है?

क्या आम नागरिक को सुरक्षा मिलती है?

और क्या कानून लागू करने वाले लोग
स्वयं भी जवाबदेह हैं?

यह आखिरी सवाल बहुत जरूरी है।

क्योंकि strong enforcement हमेशा
good enforcement नहीं होता।

बहुत कम enforcement से कानून बेअसर
हो सकता है।

लेकिन मनमाना या चुनिंदा enforcement
अन्याय बन सकता है।

इसलिए समाधान केवल ज्यादा शक्ति
नहीं है।

समाधान है:

**अच्छा कानून, निष्पक्ष enforcement,
स्पष्ट परिणाम और misuse के खिलाफ
safeguards।**

इसीलिए institutions महत्वपूर्ण हैं।

Police कानून लागू करती है, लेकिन
police भी कानून के नीचे है।

Courts फैसले करते हैं, लेकिन courts भी
नियमों से बंधे होते हैं।

Government regulations बनाती है,
लेकिन government भी accountability
से बाहर नहीं हो सकती।

एक अच्छी व्यवस्था केवल authority की
chain नहीं होती।

वह accountability की chain होती है।

कानून standard तय करता है।

Enforcement उस standard को
consequence देता है।

Accountability यह सुनिश्चित करती है
कि enforcement स्वयं अन्याय न बन
जाए।

यही सिद्धांत घर, school और
workplace में भी लागू होता है।

अगर बच्चे जानते हैं कि rule तो बनाया
गया है लेकिन उसका पालन नहीं करवाया
जाएगा, तो उन्हें जल्दी समझ आ जाता है
कि rule की वास्तविक ताकत कितनी है।

लोग केवल लिखे हुए शब्दों पर प्रतिक्रिया
नहीं करते।

वे इस पर प्रतिक्रिया करते हैं कि उन्हें
वास्तव में क्या होने की उम्मीद है।

एक समाज तब मजबूत होता है जब
कागज पर लिखा कानून और वास्तविक

जीवन में लागू कानून एक-दूसरे के करीब हों।

अच्छे कानून जरूरी हैं।

**लेकिन निष्पक्ष और नियमित
enforcement के बिना वे अधूरे हैं।**

कानून बताता है क्या होना चाहिए।

**Enforcement तय करता है कि वह
वास्तव में होगा या नहीं।**

स्वास्थ्य, संतुलन और दीर्घायु

वेलनेस का सामान्य अर्थ है—ऐसे चुनाव और जीवनशैली अपनाने का सक्रिय प्रयास जो हमारे संपूर्ण स्वास्थ्य और सुख-शांति को बेहतर बनाएँ। दीर्घायु का सीधा अर्थ है लंबा जीवन। लेकिन मेरे लिए दीर्घायु का असली अर्थ केवल यह नहीं कि हम कितने वर्ष जीवित रहे। अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि उन वर्षों में हम कितने स्वस्थ, सक्रिय और सक्षम रहे।

मुझे हमेशा एक बात ने आकर्षित किया है
—संतुलन।

जब बच्चे छोटे होते हैं, हम उनके पीछे खाना लेकर भागते रहते हैं।

“बेटा, थोड़ा और खा लो।”

“तुम कितने पतले हो।”

“आपका बच्चा कितना पतला है।”

मैंने माताओं को बच्चों के पीछे भागते देखा है ताकि किसी तरह एक चम्मच और खिला दें। लेकिन बच्चे के शरीर में एक बहुत साधारण जैविक व्यवस्था होती है। जब उसे सचमुच भूख लगेगी, वह खाना माँगेगा। प्यास लगेगी तो पानी पिएगा। पेट भर जाएगा तो रुक जाएगा।

फिर बच्चा बड़ा होता है और अचानक संदेश उल्टा हो जाता है।

“तुम मोटे हो रहे हो।”

“बहुत खाते हो।”

“इन कपड़ों में अच्छे नहीं लगते।”

किशोरावस्था में सामाजिक अपेक्षाएँ शरीर के प्राकृतिक संकेतों में हस्तक्षेप करने लगती हैं। विशेष रूप से शरीर की छवि और सामाजिक स्वीकृति का दबाव बहुत बढ़ सकता है। चरम स्थिति में भोजन और शरीर के प्रति अस्वस्थ संबंध गंभीर बीमारी का रूप भी ले सकते हैं।

प्रकृति की व्यवस्था कहीं अधिक सरल है।

भूख लगी? खाओ।

प्यास लगी? पानी पियो।

थक गए? आराम करो।

पेट भर गया? रुक जाओ।

लेकिन मनुष्य ने इन सरल जैविक
प्रणालियों को बहुत जटिल बना दिया है।

हम पानी पर नहीं रुके। हमने उसमें बहुत
अधिक चीनी मिला दी।

हम पेट भरने पर नहीं रुके। हमने खाने की
मात्रा बढ़ा दी।

हमने स्वादिष्ट और अत्यधिक प्रसंस्कृत
भोजन की अनगिनत किस्में बना लीं और
ऐसा वातावरण तैयार कर लिया जिसमें
लगभग चौबीस घंटे भोजन उपलब्ध है।

कभी-कभी बुफे का आनंद लेने में कोई
बुराई नहीं। लेकिन बुफे हमारी समस्या को

बहुत सरलता से दिखाता है—जब प्रचुरता की कोई सीमा न हो, तब संयम कठिन हो जाता है।

मानव इतिहास के बड़े हिस्से में हमारी समस्या कमी थी।

भूख और अकाल ने अनगिनत लोगों की जान ली। कृषि के विकास और हरित क्रांति ने दुनिया के अनेक हिस्सों में इस स्थिति को नाटकीय रूप से बदल दिया।

यह मानव प्रगति है और इसका सम्मान होना चाहिए।

लेकिन हमारी सफलता ने एक नई समस्या पैदा कर दी।

बहुत-से समाजों में समस्या “बहुत कम”
से बदलकर “बहुत अधिक” हो गई।

बहुत अधिक भोजन।

बहुत अधिक चीनी।

बहुत कम शारीरिक गतिविधि।

बहुत अधिक बैठना।

बहुत अधिक सुविधा।

आज हम मोटापे, टाइप 2 मधुमेह, उच्च
रक्तचाप, हृदय रोग और जीवनशैली तथा
वातावरण से प्रभावित अनेक बीमारियों से
जूझ रहे हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि इन बीमारियों का केवल एक कारण है या जो व्यक्ति बीमार हुआ उसने कोई गलती ही की होगी।

आनुवंशिकी, उम्र, वातावरण, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और अनेक दूसरे कारक भी महत्वपूर्ण हैं।

लेकिन इतना स्पष्ट है कि आधुनिक जीवन ने कई ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं जिनमें ये समस्याएँ आसानी से बढ़ती हैं।

पुरानी कहावतें पूरी तरह मूर्खतापूर्ण नहीं थीं।

समय पर सोओ।

समय पर उठो।

काम करो।

चलते-फिरते रहो।

संयम से खाओ।

हमारे पूर्वज आज की तरह शरीर के
चयापचय को नहीं समझते थे, लेकिन
बहुत-सी परंपराओं ने नियमितता और
संतुलन का महत्व समझ लिया था।

फिर भी हमें अतीत को आदर्श बनाकर नहीं
देखना चाहिए।

अतीत में बहुत कष्ट भी था।

संक्रामक रोगों ने पूरी-पूरी आबादियाँ
तबाह कर दीं। चूहे, दूषित पानी, खराब
सफाई व्यवस्था और भीड़ ने महामारियों

को फैलाने में भूमिका निभाई। ब्लैक डेथ
इसका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उदाहरण है।

लेकिन मनुष्य ने सीखा।

हमने सीवर बनाए।

हमने मल-मूत्र को पीने के पानी से अलग
किया।

हमने स्वच्छता सुधारी।

हमने रोग फैलाने वाले जीवों को नियंत्रित
करना सीखा।

हमने एंटीबायोटिक दवाएँ खोजीं।

पेनिसिलिन स्वयं एक अप्रत्याशित
अवलोकन से निकली। विज्ञान के इतिहास

में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। कोई व्यक्ति कुछ असामान्य देखता है, पूछता है “क्यों?”, उसकी जाँच करता है और धीरे-धीरे वह अवलोकन उपयोगी ज्ञान में बदल जाता है।

विनक्रिस्टीन और विनब्लास्टीन जैसी कैंसर की दवाओं का विकास मेडागास्कर पेरिविंकल पौधे पर किए गए अनुसंधान से हुआ।

प्रकृति की रसायनशाला असाधारण है।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हर प्राकृतिक वस्तु दवा है या “प्राकृतिक” होने का अर्थ हमेशा सुरक्षित होना है।

फिर वही शब्द सामने आता है:

संतुलन।

आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है—लगातार अधिकता और लगातार निष्क्रियता।

हमने जीवन को सुविधाजनक बनाया है।

सुविधा अच्छी चीज है—एक सीमा तक।

लेकिन शरीर इस्तेमाल करने के लिए बना है।

यदि हाथ में फ्रैक्चर हो और कई सप्ताह तक प्लास्टर लगा रहे, तो मांसपेशियाँ छोटी होने लगती हैं। जब फिर से गतिविधि

और व्यायाम शुरू होते हैं, तो ताकत धीरे-
धीरे लौट सकती है।

यह एक बहुत पुराने सिद्धांत का सरल
उदाहरण है:

इस्तेमाल करो, वरना खो दोगे।

उम्र बढ़ने के साथ यह सिद्धांत और भी
महत्वपूर्ण हो जाता है।

मैंने यह अपने पिता से सीखा।

उम्र बढ़ने के बाद भी वे पढ़ाने जाते थे।
सुबह उठते, नहाते, कपड़े पहनते और
स्कूल जाते। कभी स्वयं गाड़ी चलाते, कभी
हममें से कोई उन्हें छोड़ देता।

वे एक मंजिल सीढ़ियाँ चढ़कर कक्षा तक जाते।

लोगों से मिलते।

विद्यार्थियों से बातचीत करते।

नई बातों से जुड़े रहते।

हर सुबह उनके पास उठने का एक कारण था।

हम बच्चों ने प्रेम से सोचा कि अब उन्हें आराम देना चाहिए।

“पिताजी, आपने बहुत काम कर लिया।”

“अब हम कर लेंगे।”

“आप रिटायर हो जाइए।”

अंततः उन्होंने काम छोड़ दिया।

धीरे-धीरे उनकी दुनिया छोटी होने लगी।

चलना कम हुआ।

वजन बढ़ा।

वजन जितना बढ़ा, चलना उतना कठिन हुआ।

चलना जितना कठिन हुआ, गतिविधि उतनी कम हुई।

और क्योंकि सब उनसे प्रेम करते थे, हर कोई उनकी सेवा करने को तैयार था।

पानी चाहिए?

कोई ले आया।

खाना चाहिए?

कोई सामने रख गया।

लेकिन कभी-कभी प्रेम में की गई सेवा
अनजाने में व्यक्ति की गतिविधि छीन लेती
है।

जो व्यक्ति पहले स्वयं पानी लेने उठता था,
अब किसी को बुलाता है।

फिर खाना भी सामने आने लगता है।

फिर खड़े होने का कारण कम होता जाता
है।

फिर चलने का कारण कम होता जाता है।

अंततः मेरे पिता बिस्तर तक सीमित हो गए।

उनकी स्वास्थ्य समस्याएँ बढ़ती गईं और अंत में उनकी मृत्यु बहुत अचानक हुई।

उस अनुभव ने मेरे भीतर एक स्थायी शिक्षा छोड़ दी।

कभी-कभी किसी से प्रेम करने का अर्थ उसके लिए सब कुछ करना नहीं होता।

कभी-कभी प्रेम का अर्थ है उसे वह काम करते रहने के लिए प्रोत्साहित करना जो वह अभी भी स्वयं कर सकता है।

चलो।

खड़े होओ।

अपने कपड़े स्वयं पहनो।

यदि संभव हो तो अपना पानी स्वयं लो।

बाहर जाओ।

लोगों से मिलो।

जीवन में भाग लेते रहो।

शरीर का इस्तेमाल करते रहो।

दिमाग का इस्तेमाल करते रहो।

उद्देश्य भी महत्वपूर्ण है।

मेरे पिता के लिए पढ़ाना केवल नौकरी नहीं

थी। वह उनके दिन को संरचना देता था।

विद्यार्थी उनसे बात करते थे। उन्हें सुबह

तैयार होने का कारण मिलता था।

जब वह सब चला गया, तो केवल नौकरी
नहीं गई।

कुछ और भी चला गया।

इसीलिए मैं स्वयं को याद दिलाता हूँ:

अपने ऊपर इतना तरस मत खाओ कि
जीना ही छोड़ दो।

यदि दर्द है, अपनी सीमाओं के भीतर काम
करो।

लिखो।

चलो।

हिलो।

परिस्थिति के अनुसार बदलो।

जो कर सकते हो, करते रहो।

इसका अर्थ दर्द, बीमारी या चिकित्सकीय सलाह को अनदेखा करना नहीं है। इसका अर्थ है कि जिस क्षमता को बचाया जा सकता है, उसे अनावश्यक रूप से छोड़ मत दो।

मनुष्य को गतिविधि चाहिए।

लक्ष्य अपने शरीर को सजा देना नहीं है।

लक्ष्य अत्यधिक व्यायाम भी नहीं है।

लक्ष्य है—जीवन में भाग लेते रहना।

यहीं से मैं फिर दीर्घायु पर आता हूँ।

आज लोग जीवन बढ़ाने के लिए
असाधारण धन खर्च कर रहे हैं। वैज्ञानिक
आनुवंशिकी, कोशिकीय वृद्धावस्था,
टेलोमियर, चयापचय और उम्र बढ़ने की
अनेक प्रक्रियाओं का अध्ययन कर रहे हैं।

शायद एक दिन विज्ञान वृद्धावस्था को
आज से कहीं अधिक समझ पाएगा।

लेकिन अभी बहुत कुछ ऐसा है जिसे हम
नहीं जानते।

और जटिल उत्तर खोजते समय हमें उन
सरल चीजों को नहीं भूलना चाहिए जिन्होंने
मानव जीवन पहले ही बहुत लंबा कर दिया
है।

स्वच्छ पानी।

सीवर व्यवस्था।

टीकाकरण।

सुरक्षित भोजन।

एंटीबायोटिक दवाएँ।

सुरक्षित प्रसव।

जनस्वास्थ्य।

मूलभूत स्वच्छता।

मेरी दृष्टि में मल-मूत्र को सुरक्षित रूप से दूर करना और उसे पीने के पानी से अलग करना मानव इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण दीर्घायु उपलब्धियों में से एक है।

जब स्वच्छता व्यवस्था टूटती है, बीमारी लौटती है।

रुका हुआ पानी मच्छरों को बढ़ाता है।

दूषित पानी पेट और आँतों की बीमारियाँ फैलाता है।

खराब कचरा प्रबंधन कीटों और चूहों को आकर्षित करता है।

धनी व्यक्ति अक्सर इन परिस्थितियों से दूर जा सकता है। गरीब व्यक्ति के पास वह विकल्प नहीं होता। इसीलिए वातावरण, आधारभूत संरचना और स्वास्थ्य असमानता एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

इसलिए जब मैं दीर्घायु के बारे में सोचता हूँ, तो सबसे पहले अमरता के बारे में नहीं सोचता।

मैं स्पष्ट नुकसान कम करने के बारे में सोचता हूँ।

चलते रहो।

उचित मात्रा में खाओ।

सोओ।

रिश्ते बनाए रखो।

जीवन में उद्देश्य रखो।

स्वच्छता रखो।

अनावश्यक तनाव कम करो।

जहाँ चिकित्सा की आवश्यकता है, वहाँ
चिकित्सा लो।

और संतुलन बनाए रखो।

यही शब्द मेरे लिए स्वास्थ्य और जीवन
दोनों के केंद्र में है:

संतुलन।

और शायद इसी कारण जिस जगह को
बनाने के बारे में मैं सोच रहा हूँ, उसे मैं न
“वेलनेस सेंटर” कहना चाहता हूँ, न
“लॉन्जेविटी सेंटर।”

मुझे एक बहुत सरल शब्द पसंद है:

रिट्रीट।

दिनचर्या से कुछ समय पीछे हटना।

दबाव से पीछे हटना।

लगातार शोर से पीछे हटना।

फोन से पीछे हटना।

हर समय किसी को उत्तर देने की
आवश्यकता से पीछे हटना।

यह इलाज नहीं है।

यह क्लिनिक नहीं है।

यह वादा नहीं है कि कोई दूसरा व्यक्ति
आपकी जिंदगी ठीक कर देगा।

बस थोड़ी देर के लिए ऐसी जगह जहाँ
रोजमर्रा के कुछ दबाव हटा दिए जाएँ।

अच्छा भोजन।

प्रकृति।

शांति।

अकेले रहना चाहते हैं—रहिए।

बात करना चाहते हैं—कीजिए।

चलना चाहते हैं—चलिए।

मालिश चाहते हैं—लीजिए।

नींद चाहिए—सोइए।

कुछ समय कुछ नहीं करना चाहते—वह भी ठीक है।

रिट्रीट का विचार नया नहीं है। सदियों से मनुष्य सामान्य जीवन से कुछ समय दूर जाता रहा है। अनेक धार्मिक परंपराओं में मठ, आश्रम और रिट्रीट बने जहाँ लोग शोर और व्यस्तता से कुछ समय दूर रहते थे।

लेकिन मेरी कल्पना में धर्म आवश्यक नहीं है।

मौन आवश्यक नहीं है।

प्रार्थना आवश्यक नहीं है।

ध्यान आवश्यक नहीं है।

केवल एक चीज आवश्यक है:

आप।

हम जगह देते हैं।

आप तय करते हैं कि आपको क्या चाहिए।

आप स्वयं से फिर जुड़ते हैं।

आधुनिक जीवन की एक और बड़ी समस्या है—तनाव।

आर्थिक दबाव बहुत बढ़ गया है।

जीवन स्तर बढ़ता है और फिर उसी स्तर को बनाए रखने के लिए अधिक काम करना पड़ता है। अनेक परिवारों में दोनों माता-पिता को केवल घर चलाने के लिए काम करना पड़ता है।

इस प्रगति के अनेक लाभ भी हैं, विशेष रूप से महिलाओं की स्वतंत्रता और आर्थिक स्वावलंबन के लिए।

लेकिन हर बदलाव के कुछ परिणाम होते हैं।

परिवार छोटे हुए हैं और एक-दूसरे से दूर रहने लगे हैं। संयुक्त या विस्तारित परिवारों में कभी बच्चों की देखभाल, बुजुर्गों की सेवा, भोजन और रोजमर्रा की जिम्मेदारियाँ कई लोगों में बँट जाती थीं।

आज वही जिम्मेदारियाँ कभी-कभी केवल एक या दो वयस्कों पर आ जाती हैं।

मैं यह नहीं कहता कि पुरानी व्यवस्था हमेशा बेहतर थी। उसकी अपनी समस्याएँ थीं।

लेकिन मेरा दृढ़ विश्वास है कि बच्चों को अपने जीवन में भरोसेमंद वयस्कों की आवश्यकता होती है—माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा, मामा, मौसी, बुआ या दूसरे लोग जो वास्तव में उनके जीवन में उपस्थित हों।

बच्चे नकल करके सीखते हैं।

वे देखते हैं कि बड़े क्या करते हैं।

इसलिए मेरा एक सरल नियम है। मैं कभी किसी बच्चे से यह नहीं सुनना चाहता:

“मेरे पापा भी ऐसा करते हैं।”

“मेरी मम्मी भी ऐसा करती हैं।”

“मेरी आंटी भी ऐसा करती हैं।”

हमारे भाषण से बहुत पहले हमारा व्यवहार
बच्चों को शिक्षा देना शुरू कर देता है।

तकनीक भी इसी चर्चा का हिस्सा है।

फोन एक **औजार** है।

न उससे अधिक।

न उससे कम।

वह महाद्वीपों के पार परिवारों को जोड़
सकता है।

वह शिक्षा दे सकता है।

समय बचा सकता है।

ऐसी जानकारी तुरंत दे सकता है जिसकी
पिछली पीढ़ियाँ कल्पना भी नहीं कर
सकती थीं।

या वह घंटों हमारा ध्यान खा सकता है और
तीन फीट की दूरी पर बैठे दो लोगों को
एक-दूसरे से अलग कर सकता है।

समस्या हमेशा औजार नहीं है।

**समस्या यह है कि हम उसका इस्तेमाल
कैसे करते हैं।**

आज मानव समाज अनेक मायनों में अतीत
से कहीं बेहतर स्थिति में है।

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए।

लेकिन आज की कई समस्याएँ आंशिक रूप से हमारी अपनी बनाई हुई हैं।

हमने कमी को हराया और अधिकता पैदा कर दी।

हमने दूरी को हराया और लगातार व्यवधान पैदा कर दिया।

हमने मेहनत कम करने के लिए मशीनें बनाई और कभी-कभी शरीर की गतिविधि भी कम कर दी।

हमने संपत्ति बनाई और फिर उस जीवनशैली को बनाए रखने का दबाव पैदा कर लिया जो हमारा समय खाती है।

उत्तर प्रगति को अस्वीकार करना नहीं है।

उत्तर है—उसे समझदारी से इस्तेमाल
करना।

और अंत में मैं फिर उसी एक शब्द पर
लौटता हूँ:

संतुलन।

जीवन शायद ही कभी पूरी तरह काला या
पूरी तरह सफेद होता है।

शायद ही कभी सब कुछ केवल हाँ या
केवल ना होता है।

जीवन का अधिकांश हिस्सा बीच में कहीं
होता है।

गिलास आधा भरा है या आधा खाली—
शायद यह बहस ही अधूरी है।

गिलास में जितना है, उतना है।

उसे साफ-साफ देखो।

अपनी परिस्थिति समझो।

फिर तय करो कि अगला कदम क्या
होगा।

अपना केंद्र खोजो।

स्वयं को वहाँ स्थिर करो।

और चलते रहो।

नियति और भाग्य

जीवन में कुछ चीजें ऐसी हैं जिनका निर्णय हमारे भाग लेने से पहले ही हो चुका होता है।

हम यह तय नहीं करते कि हमारा जन्म कहाँ होगा।

हम अपने माता-पिता नहीं चुनते।

हम यह नहीं चुनते कि किस देश, किस आर्थिक स्थिति या किस राजनीतिक परिस्थिति में जन्म लेंगे।

इतिहास में यदि कोई बच्चा राजा का सबसे बड़ा बेटा पैदा हुआ, तो उसके समझने से बहुत पहले उसका भविष्य काफी हद तक तय हो सकता था।

उसी समय कोई दूसरा बच्चा गरीबी में
जन्म ले सकता था।

एक अवसरों के बीच जीवन शुरू करता है।

दूसरा लगभग बिना अवसर के।

इन शुरुआती परिस्थितियों का महत्व है।

यह कहना कि इनसे कोई फर्क नहीं पड़ता,
वास्तविकता से आँखें बंद करना है।

युद्ध के बीच जन्मा बच्चा उसी स्थिति से
शुरुआत नहीं करता जिस स्थिति से एक
शांत और समृद्ध समाज में जन्मा बच्चा
करता है।

जिस बच्चे के स्कूल में पुस्तकें, कंप्यूटर
और अच्छे शिक्षक हैं, उसकी शुरुआत उस

बच्चे से अलग है जिसके स्कूल में बिजली
तक नियमित नहीं है।

भूगोल महत्वपूर्ण है।

परिवार महत्वपूर्ण है।

पैसा महत्वपूर्ण है।

स्वास्थ्य महत्वपूर्ण है।

शिक्षा महत्वपूर्ण है।

भाग्य महत्वपूर्ण है।

इतिहास महत्वपूर्ण है।

इस अर्थ में हमारे जीवन का एक हिस्सा
पहले से निर्धारित होता है।

हमारे बैठने से पहले ही पत्ते बाँटे जा चुके होते हैं।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि पूरा खेल भी पहले ही खेला जा चुका है।

यही अंतर महत्वपूर्ण है।

मुझे परेशानी तब होती है जब शुरुआती परिस्थिति जीवनभर का बहाना बन जाती है।

“मैं गरीब पैदा हुआ था।”

“मैं गरीब देश से हूँ।”

“यहाँ ऐसा ही होता है।”

“मेरे माता-पिता ने यही सिखाया।”

“हमारी परंपरा यही है।”

ये बातें यह समझा सकती हैं कि आपने
शुरुआत कहाँ से की।

वे यह तय नहीं करतीं कि आपको अंत
कहाँ करना है।

इतिहास में ऐसे असंख्य लोग हुए हैं
जिन्होंने कठिन परिस्थितियों से शुरुआत
की और उनसे आगे निकले। हम बराक
ओबामा जैसे प्रसिद्ध उदाहरण याद कर
सकते हैं, लेकिन राष्ट्रपति बनना मेरा
मानदंड नहीं है।

मैं यह नहीं कह रहा कि हर व्यक्ति
राष्ट्रपति बने।

मैं यह नहीं कह रहा कि हर व्यक्ति डॉक्टर
बने।

मैं यह नहीं कह रहा कि हर व्यक्ति अमीर
बने।

मैं इससे कहीं छोटी और कहीं अधिक
व्यावहारिक बात कह रहा हूँ:

**जहाँ से आपने शुरुआत की, उससे थोड़ा
बेहतर बनने की कोशिश कर सकते हैं।**

एक वर्ष अधिक शिक्षा।

एक बेहतर निर्णय।

एक नया कौशल।

एक हानिकारक आदत छोड़ना।

एक अवसर का उपयोग करना।

अपने बच्चे को वह अवसर देना जो
आपको कभी नहीं मिला।

यह भी प्रगति है।

परिस्थितियाँ आपका एक हाथ पीछे बाँध
सकती हैं।

लेकिन यदि दूसरा हाथ खुला है, तो उसका
उपयोग कीजिए।

अवसर भी महत्वपूर्ण है।

कठिन परिस्थितियों से ऊपर उठने वाले
लोग शायद ही पूरी तरह अकेले ऐसा करते
हैं।

कोई उन्हें पढ़ाता है।

कोई दरवाजा खोलता है।

कोई छात्रवृत्ति मिलती है।

कोई स्कूल उन्हें स्वीकार करता है।

कोई मार्गदर्शक उनका हौसला बढ़ाता है।

कोई देश अवसर देता है।

हमें इन बातों को स्वीकार करना चाहिए।

लेकिन दरवाजा खुला होने का कोई लाभ
नहीं यदि कोई उसमें से गुजरता ही नहीं।

इसलिए अपनी परिस्थिति को स्वीकार
करना कभी भी उसके सामने आत्मसमर्पण
करने जैसा नहीं होना चाहिए।

हम एक और गलती करते हैं।

हम परंपरा को सत्य समझ लेते हैं।

परंपरा का मूल्य है।

संस्कृति का मूल्य है।

माता-पिता और दादा-दादी के अनुभव का
मूल्य है।

लेकिन हमें एक प्रश्न पूछते रहना चाहिए:

क्यों?

यह परंपरा क्यों शुरू हुई?

यह काम इस तरह क्यों किया जाता था?

क्या इसके पीछे कोई व्यावहारिक कारण था?

क्या वह कारण आज भी मौजूद है?

क्या आज कोई बेहतर तरीका हो सकता है?

यदि मानवता केवल यह कहती रहती, “मेरे पिता ने ऐसा किया था, इसलिए मैं भी ऐसा ही करूँगा,” तो सभ्यता सदियों पहले वहीं रुक जाती।

मानव प्रगति उन लोगों के कारण हुई जिन्होंने पूछा:

क्यों?

बीमारी क्यों फैलती है?

चीजें नीचे क्यों गिरती हैं?

बिजली इस तरह क्यों व्यवहार करती है?

यह दवा क्यों काम करती है?

भूकंप में यह इमारत क्यों गिरती है?

यह फसल क्यों खराब हुई?

क्यों?

कभी-कभी प्रश्न पूछने पर पता चलता है
कि पुराना तरीका बहुत अच्छा था।

कभी पता चलता है कि परिस्थितियाँ बदल
चुकी हैं।

वास्तुकला इसका सरल उदाहरण है।

जहाँ बार-बार भूकंप आते हैं, वहाँ लोग
अलग तरह से निर्माण करना सीखते हैं।

जहाँ बाढ़ आती है, वहाँ मकान ऊँचे बनाए
जाते हैं।

समुद्र तल पर बसे शहरों की आवश्यकताएँ
पहाड़ों पर बसे शहरों से अलग होती हैं।

बुद्धिमान उत्तर यह नहीं है:

“हम हमेशा से ऐसा ही करते आए हैं।”

और यह भी नहीं:

“हर पुरानी चीज बेकार है।”

बुद्धिमान उत्तर है:

**पहले समझो कि क्यों। फिर परिस्थिति
के अनुसार बदलो।**

यही बात साधारण आदतों पर भी लागू
होती है।

यदि कोई सांस्कृतिक परंपरा है, तो उसकी
शुरुआत समझो।

यदि आज भी उसका उपयोग है, तो उसे
बचाकर रखो।

यदि परिस्थिति बदल गई है, तो दोबारा
सोचो।

प्रश्न पूछना अपमान नहीं है।

बिना सोचे दोहराते रहना बुद्धिमानी नहीं है।

पुराने समाज और आधुनिक वैज्ञानिक
दुनिया के बीच एक बड़ा अंतर यह है कि
आज ज्ञान कैसे साझा किया जाता है।

कभी विशेष ज्ञान परिवारों, कारीगरों या
छोटे समूहों के भीतर बंद रहता था।

एक कारीगर केवल अपने बेटे को सिखाता
था।

कोई उपचार जानने वाला व्यक्ति अपना
ज्ञान रहस्य बनाकर रख सकता था।

आधुनिक विज्ञान ने अलग रास्ता
अपनाया।

देखो।

परीक्षण करो।

लिखो।

प्रकाशित करो।

किसी दूसरे को परीक्षण करने दो।

उसे असहमत होने दो।

उसे प्रयोग दोहराने दो।

ज्ञान को यात्रा करने दो।

इस खुलेपन ने मानव प्रगति को बहुत तेज किया।

जब ज्ञान बंद हो जाता है, प्रगति धीमी हो जाती है।

जब लोग प्रमाण देख सकते हैं और एक-दूसरे के काम पर आगे निर्माण कर सकते हैं, सभ्यता आगे बढ़ती है।

इसलिए मेरा विश्वास है कि हमें खुले रहना चाहिए।

हम सब मनुष्य हैं।

हम एक-दूसरे से सीख सकते हैं।

हर गलती को स्वयं दोहराना आवश्यक नहीं है।

एक बुद्धिमान व्यक्ति अपने अनुभव से सीखता है।

एक बुद्धिमान समाज उन लाखों लोगों के अनुभव से सीखता है जिनसे वह कभी मिला भी नहीं।

तो फिर नियति और भाग्य का क्या अर्थ है?

मेरा विश्वास है कि हमारी शुरुआती परिस्थितियों का बड़ा हिस्सा पहले से निर्धारित होता है।

लेकिन उसके बाद उठाया जाने वाला हर कदम पहले से तय नहीं होता।

छोटा कद आपके जीवन की गुणवत्ता तय नहीं करता।

गरीब पैदा होना यह निश्चित नहीं करता कि आप गरीब ही मरेंगे।

अमीर पैदा होना यह निश्चित नहीं करता
कि आप हमेशा अमीर रहेंगे।

कठिन परिस्थिति में पैदा होने का अर्थ यह
भी नहीं कि केवल मेहनत करने से हर
कठिनाई समाप्त हो जाएगी।

जीवन इतना सरल नहीं है।

लेकिन कुछ न करना एक बात लगभग
निश्चित कर देता है:

कुछ नहीं बदलेगा।

यहीं हमारे पास कुछ नियंत्रण है।

हम सीख सकते हैं।

हम बदल सकते हैं।

हम प्रश्न पूछ सकते हैं।

हम मेहनत कर सकते हैं।

हम सहायता स्वीकार कर सकते हैं।

हम किसी दूसरे की सहायता कर सकते हैं।

हम दिशा बदल सकते हैं।

हम फिर प्रयास कर सकते हैं।

कभी सफल होंगे।

कभी असफल होंगे।

कभी हमारी पूरी कोशिश के बावजूद
परिस्थिति हमसे अधिक शक्तिशाली
होगी।

यही जीवन है।

लेकिन ठहर जाना हमारी जीवन-दृष्टि नहीं
होनी चाहिए।

एक नदी के बारे में सोचिए।

नदी चलती रहती है।

कभी धीरे।

कभी तेज।

वह बाधाओं के चारों ओर रास्ता बनाती है।

उसकी दिशा बदलती है।

कभी संकरी होती है।

कभी चौड़ी।

कभी सामने अचानक नियाग्रा फॉल्स जैसी
गिरावट आ जाती है।

नदी हमेशा यह नहीं देख सकती कि अगले
मोड़ के बाद क्या है।

हम भी नहीं देख सकते।

इसलिए ऐसी बाढ़ मत बनो जो सामने आने
वाली हर चीज को नष्ट कर दे।

लेकिन रुका हुआ पानी भी मत बनो।

चलते रहो।

शायद यही इस पूरी पुस्तक का सबसे
सरल निष्कर्ष है।

अपनी परिस्थितियों को पहचानो।

जो वास्तविक है, उसे स्वीकार करो।

जिस पर प्रश्न करना चाहिए, उस पर प्रश्न करो।

अपने से पहले आए लोगों से सीखो।

जो पत्ते तुम्हें मिले हैं, उनके साथ अपना सर्वश्रेष्ठ करो।

और जब परिस्थिति बदले, स्वयं को भी बदलो।

तुम्हारे पास जितने औजार हैं, शायद तुम्हें स्वयं भी उनका पूरा अंदाज़ा नहीं।

उन्हें खोजो।

उनका उपयोग करो।

उन्हें बेहतर बनाओ।

दूसरों को उनके औजार खोजने में
सहायता करो।

तुम्हारी शुरुआत शायद तुम्हारे लिए
चुनी गई थी। लेकिन अगला कदम
अभी भी तुम्हारा है।

ठहरे मत।
बहती नदी
बनो।

CHAPTER FOURTEEN

असाधारण भी साधारण बन जाता है

तकनीक की एक अजीब बात है।

जब कोई नई तकनीक हमारे जीवन का हिस्सा बन जाती है, तो हम धीरे-धीरे यह भूल जाते हैं कि वह वास्तव में कितनी असाधारण है।

मुझे GPS नेविगेशन के शुरुआती दिनों की एक घटना आज भी याद है। मेरे पास उस समय Infiniti QX56 थी। एक दिन मैंने हमारे एक पारिवारिक परिचित को अपनी गाड़ी में बैठाया। वे एक जाने-माने सर्जन थे

और उस समय उनकी उम्र लगभग अड़सठ
या सत्तर वर्ष रही होगी।

GPS चालू था।

एक महिला की आवाज़ बड़े आराम से
निर्देश दे रही थी।

“बाएँ मुड़िए।”

“सीधे चलते रहिए।”

“गति कम कीजिए।”

मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि वे गाड़ी
के अंदर इधर-उधर देखने लगे। फिर उन्होंने
अपना सिर ऊपर उठाकर और चारों ओर
देखकर यह जानने की कोशिश की कि
आखिर यह आवाज़ आ कहाँ से रही है।

फिर मेरी ओर देखकर बोले:

**“डॉक्टर, यह औरत कहाँ छिपी हुई है?
कहाँ है?”**

आज यह बात सुनकर हँसी आती है।

लेकिन क्या उस समय उनका सवाल
सचमुच इतना बेतुका था?

वे एक बुद्धिमान और उच्च शिक्षित व्यक्ति
थे। चिकित्सा और शल्य-चिकित्सा का
उन्हें दशकों का अनुभव था। समस्या उनकी
बुद्धि की नहीं थी।

समस्या केवल इतनी थी कि जिस तकनीक
का वे अनुभव कर रहे थे, उसके लिए उनके
पास कोई परिचित संदर्भ नहीं था।

एक महिला की आवाज़ जानती थी कि हमारी चलती हुई गाड़ी कहाँ है। उसे पता था कि हमें कहाँ जाना है। और वह ठीक समय पर हमें बता रही थी कि कहाँ मुड़ना है।

उन्होंने इसका अर्थ उस दुनिया के आधार पर निकाला जिसे वे जानते थे।

कहीं न कहीं कोई औरत जरूर बैठी होगी।

आज कोई बच्चा उसी गाड़ी में बैठे, वही आवाज़ सुने, तो शायद उसकी ओर ध्यान भी न दे।

तकनीक यही करती है।

**जो कल असाधारण था, वह आज
साधारण बन जाता है।**

GPS को कुछ क्षण के लिए बिना आदत
की नज़र से देखिए।

अकेले बैंकॉक में लाखों गाड़ियाँ चल रही
हो सकती हैं। पूरी दुनिया में असंख्य वाहन,
मोबाइल फोन और दूसरे उपकरण
सैटेलाइट नेविगेशन का उपयोग कर रहे हैं।

फिर भी आपकी जेब या गाड़ी में रखा
छोटा-सा उपकरण अच्छी परिस्थितियों में
कुछ मीटर की सटीकता तक यह पता लगा
सकता है कि आप कहाँ हैं।

उसे आपका गंतव्य पता है।

वह रास्ता निकालता है।

आप गलत मोड़ ले लें तो वह दोबारा रास्ता बनाता है।

और हम इसे सामान्य मानते हैं।

एक समय था जब किसी अनजान जगह जाने के लिए एक बड़ा कागज़ का नक्शा खोलना पड़ता था। कोई व्यक्ति आपके बगल में या पीछे बैठकर उस नक्शे पर सड़कें ढूँढ़ता रहता था।

कभी रास्ते में गाड़ी रोककर किसी से पूछना पड़ता था।

“तीसरी पीली इमारत के बाद मुड़ जाना।”

छह महीने बाद आप उसी रास्ते पर लौटे।

अरे!

इमारतों का रंग बदल दिया गया था।

आज हम हँस सकते हैं, लेकिन उस समय
यही नेविगेशन था।

GPS ने इसे बदल दिया।

इसका अर्थ यह नहीं कि GPS कभी गलत
नहीं होता।

वह गलत हो सकता है। नक्शा पुराना हो
सकता है। सड़क बदल सकती है। कभी-
कभी लोग नेविगेशन के निर्देशों का इतना
आँख बंद करके पालन करते हैं कि
सामान्य बुद्धि उन्हें जहाँ रुकने को कह रही
होती है, वहाँ भी वे आगे बढ़ते रहते हैं।

इससे मिलने वाला सबक यह नहीं है कि तकनीक अचूक है।

सबक लगभग इसका उल्टा है।

एक अद्भुत उपकरण भी गलत हो सकता है।

यही बात कृत्रिम बुद्धिमत्ता—AI—पर भी लागू होती है।

AI एक अद्भुत, अद्भुत, अद्भुत तकनीक है।

मैं इसका बहुत बड़ा समर्थक हूँ क्योंकि मैंने देखा है कि यह क्या कर सकती है। लेकिन किसी तकनीक से प्रभावित होने का अर्थ यह नहीं कि हम अपना निर्णय लेने का अधिकार उसे सौंप दें।

AI अकेली पर्याप्त नहीं है।

और हर परिस्थिति में मनुष्य अकेला भी पर्याप्त नहीं है।

यह एक टीम है।

हर सदस्य की अपनी भूमिका है।

कोई अनुभव लाता है। कोई ज्ञान। कोई विचारों को व्यवस्थित करता है। कोई सवाल उठाता है। कोई जाँच करता है। और कोई वह छोटी-सी छूटी हुई बात पकड़ लेता है जिसे बाकी सबने अनदेखा कर दिया।

अगर एक हिस्सा भी तालमेल से बाहर हो जाए, तो परिणाम खराब हो सकता है।

इसीलिए मैं कृत्रिम बुद्धिमत्ता को मनुष्य का स्थान लेने वाली चीज़ नहीं मानता।

मैं इसे मनुष्य के पास उपलब्ध एक और असाधारण उपकरण मानता हूँ।

इतिहास ऐसे असाधारण उपकरणों से भरा पड़ा है।

बिजली।

बिजली का बल्ब।

टेलीफोन।

मोटर गाड़ी।

कंप्यूटर।

GPS।

AI

जब कोई तकनीक नई होती है, लोग उस पर संदेह करते हैं। कभी उसका मज़ाक उड़ाते हैं। कभी उसकी क्षमता को बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं और कभी उसके खतरों को।

आखिर में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं होता कि लोग उस तकनीक के बारे में क्या कह रहे हैं।

मुझे उसका इस्तेमाल करके दिखाइए।

क्या वह काम करती है?

वह वास्तव में क्या कर सकती है?

वह कहाँ असफल होती है?

और उसका उपयोग कैसे किया जाना चाहिए?

ये प्रश्न किसी तकनीक की पूजा करने या उसे पूरी तरह खारिज करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं।

फिर भी मानव सभ्यता की कुछ सबसे बड़ी उपलब्धियाँ आश्चर्यजनक रूप से सरल थीं।

स्वच्छता के बारे में सोचिए।

सीवेज को भूमिगत करना और मानव मल-मूत्र को पीने के साफ पानी से अलग रखना AI या पृथ्वी की परिक्रमा करते उपग्रहों जितना रोमांचक नहीं सुनाई देता।

लेकिन उसने मानव जीवन में कितना बड़ा परिवर्तन किया।

चिकित्सा को देखिए।

आज हमारे पास अत्याधुनिक जाँच मशीनें हैं, जटिल दवाएँ हैं, रोबोटिक सर्जरी है और ऐसी तकनीकें हैं जिनकी पिछली पीढ़ियाँ शायद कल्पना भी नहीं कर सकती थीं।

फिर भी चिकित्सा के सबसे महत्वपूर्ण निर्देशों में से एक आज भी बेहद सरल है:

अपने हाथ धोइए।

एसेप्टिक तकनीक ने परिणाम बदल दिए।

किसी समाधान को अत्यंत जटिल दिखाई देना आवश्यक नहीं है कि उसका प्रभाव बहुत बड़ा हो।

और थोड़ा और पीछे जाइए।

विपरीत दिशा में मुड़ सकने वाले हमारे अंगूठे—**opposable thumb**—के बारे में सोचिए।

देखने में कितना छोटा-सा जैविक परिवर्तन।

लेकिन मानव हाथ को दृष्टि, बुद्धि, सीखने की क्षमता और ज्ञान को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने की क्षमता के साथ जोड़िए, और कुछ असाधारण होने लगता है।

हम पकड़ते हैं।

हम चीज़ों को नियंत्रित करते हैं।

हम औज़ार बनाते हैं।

फिर उस औज़ार को बेहतर बनाते हैं।

कोई दूसरा व्यक्ति उसे बनाना सीखता है।

अगली पीढ़ी वहाँ से शुरू करती है जहाँ
पिछली पीढ़ी रुकी थी।

और एक दिन औज़ार स्वयं दूसरे औज़ार
बनाने लगते हैं।

इन्हीं छोटे-छोटे संचित कदमों से मशीनें
बनीं, बिजली आई, उपग्रह बने, कंप्यूटर
बने और अंततः कृत्रिम बुद्धिमत्ता आई।

अंतिम परिणाम को देखकर सब कुछ
अत्यंत जटिल दिखाई देता है।

लेकिन उसे तोड़कर देखिए और उसके मूल
तत्व दिखाई देने लगते हैं।

मैंने अपने जीवन में और अपनी पुस्तकों में
बहुत-सी समस्याओं को इसी प्रकार देखा
है।

**जटिल समस्या को उसके मूल तत्वों में
तोड़िए।**

अच्छे स्कूल में प्रवेश पाना बहुत जटिल
लगता है।

इसे तोड़िए।

दीर्घायु—longevity—बहुत जटिल
लगती है।

इसे तोड़िए।

एक जाँचा-परखा, समझा हुआ जीवन—
an examined life—असीम रूप से
जटिल लग सकता है।

इसे भी तोड़िए।

कभी-कभी किसी एक मूल तत्व में छोटा-
सा परिवर्तन पूरे तंत्र को बदल देता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि हर जटिल
समस्या का उत्तर सरल होता है।

इसका अर्थ केवल इतना है कि किसी
समस्या की जटिलता हमें उसके अलग-

अलग हिस्सों को समझने से रोक नहीं
सकती।

और जो चीज़ हमें समझ नहीं आती, उसे
केवल इसलिए असंभव भी नहीं मान लेना
चाहिए।

मेरे सर्जन मित्र समझ नहीं पा रहे थे कि
एक ऐसी महिला, जो कहीं दिखाई नहीं दे
रही थी, कैसे जानती थी कि हमारी
Infiniti कहाँ जा रही है।

उनके पास उपलब्ध जानकारी के आधार
पर उनका निष्कर्ष स्वाभाविक था:

उस औरत को ढूँढ़ो।

जब तकनीक और उसका तंत्र समझ में आ गया, तब गाड़ी में किसी महिला को खोजने की आवश्यकता नहीं रही।

हो सकता है आज भी हम कुछ चीज़ों को समझने के लिए रूपक रूप में उसी गाड़ी की छत पर किसी को खोज रहे हों, क्योंकि हमें अभी उनका तंत्र समझ में नहीं आया है।

इसका अर्थ यह नहीं कि हमें हर असाधारण दावे पर विश्वास कर लेना चाहिए।

इसका अर्थ यह है कि हमारे भीतर इतनी जिज्ञासा बनी रहनी चाहिए कि हम जाँच

करें, और इतनी विनम्रता भी कि हम कह सकें:

मुझे अभी समझ नहीं आया कि यह कैसे काम करता है।

यह कहने और यह कहने में बहुत अंतर है:

यह काम ही नहीं कर सकता।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता अभी बहुत युवा है।

हम जानेंगे कि वह किन चीज़ों में असाधारण रूप से अच्छी है। हम यह भी जानेंगे कि वह कहाँ खराब है। उसका उपयोग करते हुए हम गलतियाँ करेंगे। हम उसे बेहतर बनाएँगे। हम उसके बारे में बहस करेंगे।

और अंततः, जो बातें आज हमें चकित करती हैं, उनमें से बहुत-सी एक दिन साधारण लगने लगेंगी।

मेरे लिए बेहतर प्रश्न कभी यह नहीं रहा कि AI की प्रशंसा की जाए या उसकी निंदा।

प्रश्न यह है:

हम इसके साथ क्या बना सकते हैं?

ये पुस्तकें उसका एक छोटा-सा उत्तर हैं।

इनकी शुरुआत जीवन के अनुभवों, बातचीत, असहमतियों, सवालों, यादों और विचारों से हुई।

मानवीय निर्णय पूरे समय साथ रहा।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने अपनी क्षमताएँ जोड़ीं।

हमने एक-दूसरे से सवाल किए। एक-दूसरे को सुधारा। विचारों को व्यवस्थित किया। और निर्माण करते रहे।

अंततः शब्द स्क्रीन से बाहर निकले।

पुस्तकें छपने चली गईं।

तकनीक ने किसी जीवन को नहीं लिखा।

और एक मनुष्य ने भी सब कुछ अकेले नहीं बनाया।

एक टीम ने मिलकर कुछ बनाया।

यही बात महत्वपूर्ण है।

सबूत इस बात में नहीं है कि हम दावा क्या करते हैं कि कोई उपकरण कर सकता है।

सबूत इस बात में है कि हम उस उपकरण के साथ क्या करते हैं।

आप क्यों नहीं?

कृत्रिम बुद्धिमत्ता—आर्टिफ़िशियल
इंटेलिजेंस—हमारे समय की सबसे बड़ी
तकनीकी उपलब्धियों में से एक है।

इस बात से इनकार करने का कोई अर्थ
नहीं।

AI लिख सकता है, व्यवस्थित कर सकता
है, सारांश बना सकता है, तुलना कर
सकता है, प्रश्न उठा सकता है, किसी
विचार को नए ढंग से प्रस्तुत कर सकता है,
अनुवाद कर सकता है और अलग-अलग
विचारों के बीच संबंध खोज सकता है। यह
घंटों का काम बचा सकता है। बिखरे हुए

विचारों को लेकर उन्हें एक सुव्यवस्थित रूप देने में सहायता कर सकता है।

यह एक अद्भुत साधन है।

लेकिन किसी साधन के योगदान को स्वीकार करना और उसी साधन का नाम लेकर उसे इस्तेमाल करने वाले व्यक्ति के योगदान को नकार देना—ये दो बिल्कुल अलग बातें हैं।

और यह अंतर महत्वपूर्ण है।

जब मैं किसी से कहता हूँ कि मैंने एक किताब लिखी है, तो कभी-कभी उत्तर लगभग तुरंत आता है:

“अरे, यह तो AI है।”

बस दो अक्षर—और मानो पूरी चर्चा
समाप्त।

वे घंटे गायब।

वे अनुभव गायब।

वे विचार गायब।

निर्णय, सुधार, बहस, हटाए गए अंश,
दोबारा लिखे गए अध्याय, बदली हुई दिशा
और अलग-अलग विषयों को जोड़ने का
सारा प्रयास—सब गायब।

सब कुछ केवल दो अक्षरों में समेट दिया
जाता है:

AI

मैंने इस काम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की
भूमिका से कभी इनकार नहीं किया।

इसके ठीक विपरीत, मैं खुले तौर पर
TEAM ACCD को स्वीकार करता हूँ।

यह सहयोग वास्तविक है।

लेकिन सहयोग और लेखकीय योगदान
एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

सदियों से संपादक रहे हैं। शोधकर्ता
लेखकों की सहायता करते रहे हैं।

वैज्ञानिक टीमों में काम करते हैं। लोग
अपने विचार बोलकर लिखवाते रहे हैं।

अनुवादक एक भाषा और संस्कृति के
विचारों को दूसरी भाषा और संस्कृति में

नया रूप देते रहे हैं। लेखक अपने मसौदों पर दूसरों से चर्चा करते हैं, आलोचना सुनते हैं और फिर उन्हें संशोधित करते हैं।

हमने कभी यह निष्कर्ष नहीं निकाला कि सहायता मिलने का अर्थ है कि उस व्यक्ति के पास कहने के लिए अपना कुछ था ही नहीं।

हाँ, AI उस सहायता की क्षमता और स्तर को बहुत आगे ले जाता है।

इससे इनकार करना भी मूर्खता होगी।

AI किसी विचार में योगदान दे सकता है। वह किसी तर्क को चुनौती दे सकता है। वह ऐसे संबंध सुझा सकता है जिनके बारे

में मैंने नहीं सोचा था। वह किसी उलझी हुई बात को अधिक स्पष्ट बना सकता है।

और कभी-कभी वह मुझे यह भी बता सकता है कि मैं गलत हूँ।

अच्छी बात है।

इसीलिए तो वह उपयोगी है।

लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि ऐसे सहयोग से बना पूरा काम केवल उस साधन का हो गया।

एक बहुत साधारण उदाहरण लीजिए।

चपाती बनाने में बेलन की आवश्यकता होती है।

बेलन की भूमिका है।

यह कहना कि बेलन की कोई भूमिका नहीं थी, हास्यास्पद होगा।

लेकिन कोई मेज़ पर रखी चपाती देखकर यह नहीं कहता:

“वाह! क्या कमाल का बेलन है।”

किसी ने आटा तैयार किया।

किसी ने पानी का अनुपात समझा।

किसी ने उसे गूँधा।

किसी ने उसे बेला, आकार सुधारा, तवे पर डाला, आँच देखी और तय किया कि वह कब तैयार है।

बेलन महत्वपूर्ण था।

लेकिन बेलन पकड़ने वाला व्यक्ति भी महत्वपूर्ण था।

निस्संदेह AI बेलन से कहीं अधिक जटिल और सक्षम है। वह बौद्धिक प्रक्रिया में उस प्रकार भाग ले सकता है जैसा कोई साधारण उपकरण नहीं कर सकता।

फिर भी मूल प्रश्न वही रहता है:

उस व्यक्ति ने उस साधन का किया क्या?

यही प्रश्न केवल लेखन पर लागू नहीं होता।

एक चिकित्सक किसी उन्नत निदान प्रणाली का उपयोग करने लगे तो वह चिकित्सक होना बंद नहीं कर देता।

एक इंजीनियर अत्याधुनिक सॉफ्टवेयर इस्तेमाल करे तो वह इंजीनियर होना बंद नहीं कर देता।

जब AI किसी पेशेवर के कागज़ी काम के पाँच घंटे बचाता है, तो हम उसे बढ़ी हुई कार्यक्षमता कहते हैं।

हम यह नहीं कहते कि अब उस पेशेवर का कोई योगदान ही नहीं रहा।

तो फिर बौद्धिक और रचनात्मक कार्य के लिए नियम अचानक अलग क्यों हो जाए?

महत्वपूर्ण प्रश्न हमेशा से बहुत सरल रहे हैं:

कौन?

कहाँ?

कब?

क्यों?

कैसे?

साधन का उपयोग कौन कर रहा है?

उसका उपयोग कहाँ उचित है?

उसे कब इस्तेमाल करना चाहिए?

हम उसका उपयोग क्यों कर रहे हैं?

और शायद सबसे महत्वपूर्ण—

हम उसका उपयोग कैसे कर रहे हैं?

तकनीक निर्णय लेने की आवश्यकता को समाप्त नहीं करती।

बल्कि अच्छे निर्णय को और अधिक महत्वपूर्ण बना देती है।

दो लोगों को एक जैसा हथौड़ा दीजिए—वे एक जैसा घर नहीं बनाएँगे।

दो लोगों को एक जैसा कैमरा दीजिए—वे एक जैसी तस्वीर नहीं खींचेंगे।

करोड़ों लोगों को इंटरनेट दीजिए—वे सभी समान ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे।

और अब करोड़ों लोगों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता दे दीजिए।

वे सभी एक जैसा काम नहीं करेंगे।

और यहीं से वह प्रश्न आता है जो सबसे पहले मेरे मन में झुंझलाहट में उठा था:

फिर आप क्यों नहीं?

पहली बार सुनने पर यह प्रश्न चुनौती जैसा लग सकता है।

शायद अहंकार जैसा भी।

लेकिन ऐसा होना आवश्यक नहीं है।

यदि पूरी उपलब्धि का कारण केवल AI है, और वही तकनीक लाखों-करोड़ों लोगों के पास उपलब्ध है, तो हर व्यक्ति वही परिणाम क्यों नहीं पैदा कर रहा?

क्योंकि किसी साधन तक पहुँच होना और
उसका प्रभावी उपयोग करना दो अलग
बातें हैं।

इसलिए “आप क्यों नहीं?” का अधिक
महत्वपूर्ण अर्थ आरोप नहीं है।

यह एक निमंत्रण है।

AI आ चुका है।

यह अत्यंत शक्तिशाली है।

जानिए कि यह क्या कर सकता है।

जानिए कि यह क्या नहीं कर सकता।

इससे प्रश्न कीजिए।

इसे सुधारिए।

इससे बहस कीजिए।

अपने ज्ञान और अनुभव को साथ लाइए।

जो बात सही न लगे, उसे अस्वीकार
कीजिए।

और यदि सामने रखा गया तर्क आपसे
बेहतर हो, तो उसे स्वीकार करने का साहस
भी रखिए।

अपने विचार सामने रखिए।

और फिर—

कुछ बनाइए।

किसी शक्तिशाली साधन का उपयोग
करने में केवल इसलिए संकोच मत

कीजिए क्योंकि पिछली पीढ़ियों के पास वह उपलब्ध नहीं था।

मानव प्रगति कभी इस तरह नहीं हुई।

लेकिन केवल इसलिए अपना विवेक भी उसके हवाले मत कर दीजिए क्योंकि वह शक्तिशाली है।

साधन का काम सोच को बढ़ाना होना चाहिए, सोचने की आवश्यकता को समाप्त करना नहीं।

यही विचार इन पन्नों में बार-बार अलग-अलग रूपों में सामने आया है।

साधन महत्वपूर्ण हैं।

लेकिन उनसे भी अधिक महत्वपूर्ण है—

उन्हें कौन इस्तेमाल करता है, कहाँ करता है, कब करता है, क्यों करता है और कैसे करता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के योगदान को स्वीकार कीजिए।

मानवीय प्रयास को भी स्वीकार कीजिए।

दोनों के लिए जगह है।

और यदि यह असाधारण नया साधन किसी साधारण व्यक्ति को अपने विचारों की जाँच करने, अपने अनुभवों को व्यवस्थित करने, अपनी धारणाओं को चुनौती देने और ऐसी चीज़ बनाने में

सहायता करता है जो शायद इसके बिना
कभी अस्तित्व में ही न आती—

तो शायद हमारी पहली प्रतिक्रिया यह नहीं
होनी चाहिए:

“अरे, यह तो AI है।”

शायद पहला प्रश्न होना चाहिए:

**“मैं इसकी सहायता से क्या कर सकता
हूँ?”**

और अंततः—

आप क्यों नहीं?

स्कूल से पहले चरित्र

माता-पिता अपने बच्चों को अच्छे स्कूल में दाखिला दिलाने के लिए बहुत मेहनत करते हैं। इसमें कुछ गलत नहीं है। लेकिन शिक्षा जीवन का केवल एक हिस्सा है। बच्चे को बनाने में पढ़ाई और अच्छे नंबरों से कहीं अधिक चीज़ों की आवश्यकता होती है।

मेरी सलाह बहुत सीधी है—सबसे पहले उसका चरित्र बनाइए।

उसे ईमानदारी सिखाइए। उसे सिखाइए कि जीवन में हर समय शॉर्टकट नहीं ढूँढे जाते। उसे समझाइए कि हर काम का एक परिणाम होता है। झूठ बोलना, धोखा देना

और अपनी बात मनवाने के लिए दूसरों को चालाकी से इस्तेमाल करना गलत है।

ये बातें तेरह, सोलह या सत्रह वर्ष की उम्र में सिखाना शुरू नहीं किया जाता, जब अचानक हमें परीक्षा, अच्छे नंबर और कॉलेज की चिंता होने लगती है। तब तक बहुत-सी आदतें बन चुकी होती हैं।

चरित्र की नींव उससे बहुत पहले पड़ती है।

बच्चे सब कुछ देखते हैं। वे हमारी कल्पना से कहीं जल्दी सीखते हैं। उन्हें पता होता है कि पापा से क्या मिलेगा, मम्मी से क्या मिलेगा, दादी या नानी से क्या मिलेगा,

और अपनी इच्छा पूरी करवाने के लिए उन्हें क्या करना है।

इसीलिए माता-पिता के व्यवहार में निरंतरता आवश्यक है।

बच्चे का गुस्सा या ज़िद बातचीत का हथियार नहीं बनना चाहिए। कभी-कभी “नहीं” का अर्थ केवल “नहीं” ही होना चाहिए।

यह प्यार की कमी नहीं है।

कभी-कभी दृढ़ता भी प्यार का ही एक रूप होती है।

अगर हर बार रोने, गुस्सा करने या ज़िद करने के बाद बच्चे को वही मिल जाए जो

वह चाहता है, तो वह बहुत जल्दी सीख जाता है कि इस तरीके से काम बनता है। फिर एक माँग दूसरी माँग बनती है। माँग धीरे-धीरे अपेक्षा बनती है, और अपेक्षा अधिकार की भावना में बदल सकती है।

बच्चे को जीवन का एक बहुत महत्वपूर्ण सच समझना चाहिए:

जीवन में बहुत कम चीज़ें केवल इसलिए मिलती हैं क्योंकि हम उन्हें चाहते हैं।

इनाम कमाया जाता है।

विश्वास कमाया जाता है।

सुविधाएँ और विशेषाधिकार कमाए जाते हैं।

यही जीवन है।

ईमानदारी, अनुशासन, जिम्मेदारी और सम्मान किसी एक धर्म या संस्कृति की संपत्ति नहीं हैं। ये ईसाई, मुस्लिम, हिंदू या सिख होने तक सीमित नहीं हैं। ये मानवीय मूल्य हैं। धर्म और संस्कृति उन्हें समझाने का एक ढाँचा दे सकते हैं, लेकिन बच्चा सबसे पहले इन्हें अपने आसपास के लोगों को देखकर सीखता है।

इसलिए माता-पिता की उपस्थिति बहुत जरूरी है।

उपस्थित होने का अर्थ केवल चीज़ें खरीदकर देना नहीं है।

नया फोन, नई गाड़ी, महंगा स्कूल या कोई और उपहार आपके समय की जगह नहीं ले सकता। बहुत से माता-पिता बहुत मेहनत करते हैं और सच्चे मन से सोचते हैं कि बच्चे को अच्छी चीज़ें देना ही उनके प्यार का प्रमाण है।

लेकिन चीज़ें आपकी मौजूदगी की जगह नहीं ले सकतीं।

बच्चे को आपका समय चाहिए।

आपका ध्यान चाहिए।

सीमाएँ चाहिए।

और सबसे बढ़कर आपका उदाहरण चाहिए।

अपनी अनुपस्थिति की भरपाई हमेशा किसी बेहतर या महँगी चीज़ से नहीं की जा सकती।

ये सारी बातें धीरे-धीरे बनती हैं—एक-एक ईंट की तरह। ऐसा नहीं होता कि बच्चा किशोर हुआ और एक सुबह अचानक जिम्मेदार, अनुशासित और ईमानदार बन गया।

अक्सर उस घर और उस घर के वातावरण में फर्क महसूस किया जा सकता है जहाँ माता-पिता सक्रिय रूप से बच्चों की जिंदगी में शामिल हैं और जहाँ कोई स्थिर मार्गदर्शन या अनुशासन नहीं है।

इसका अर्थ यह नहीं कि परिवार को पूर्ण होना चाहिए।

माता-पिता भी गलतियाँ करते हैं। पति-पत्नी में बहस होती है। जिंदगी में मुश्किलें आती हैं।

लेकिन बच्चे को स्थिरता चाहिए।

अगर माता-पिता के बीच मतभेद हैं, तो बच्चे को उस लड़ाई का मैदान मत बनाइए। उसे किसी एक का पक्ष चुनने के लिए मजबूर मत कीजिए। बड़ों की समस्याओं का बोझ बच्चे के कंधों पर मत रखिए।

जहाँ तक संभव हो, बच्चे को एक सुरक्षित
और स्थिर भावनात्मक वातावरण दीजिए।

और अपनी कुर्बानियों का हिसाब मत
रखिए।

“मैंने तुम्हारे लिए दिन-रात काम किया।”

“मैंने अपनी पूरी जिंदगी तुम्हारे लिए दे
दी।”

“मैंने तुम्हें सब कुछ दिया, अब तुम्हारी बारी
है।”

बच्चे ने इस सौदे के लिए नहीं कहा था।

माता-पिता होना भविष्य में वसूल किया
जाने वाला कर्ज नहीं है।

जो करना है इसलिए कीजिए क्योंकि
आपने माता-पिता होने की जिम्मेदारी
स्वीकार की है।

अगर आगे चलकर बच्चा आपके लिए
बहुत कुछ करता है, बहुत अच्छी बात है।
अगर नहीं भी करता, तब भी आप यह कह
सकें:

मैंने अपनी जिम्मेदारी निभाई।

मैंने अपनी समझ और क्षमता के अनुसार
अपने बच्चे को अच्छी तरह पाला।

मेरा हिसाब पूरा है।

जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, माता-पिता का
सीधा नियंत्रण स्वाभाविक रूप से कम

होता जाता है। दोस्त, स्कूल, समाज और
आखिरकार स्वतंत्र जीवन अपना प्रभाव
डालने लगते हैं।

इसीलिए नींव पहले डालनी पड़ती है—
बाहरी दुनिया का प्रभाव मजबूत होने से
पहले।

घर में अधिकार और सीमाएँ भी स्पष्ट होनी
चाहिए।

मेरे घर में नियम बहुत सरल था। जिंदगी
का आनंद लो। दोस्त बनाओ। बाहर
जाओ। दुनिया को देखो। लेकिन कुछ
सीमाएँ हैं, और वे सीमाएँ स्पष्ट हैं।

हर परिवार के नियम अलग हो सकते हैं।

वह मुख्य बात नहीं है।

मुख्य बात यह है कि बच्चे को पता हो कि सीमा कहाँ है। उसे पता हो कि माता-पिता जो कहते हैं, उसका अर्थ वही है। और उसे यह भी पता हो कि केवल इसलिए प्यार समाप्त नहीं हो जाता क्योंकि किसी बात का जवाब “नहीं” है।

इसलिए छोटी उम्र में यह चिंता मत कीजिए कि आपका बच्चा आखिर किस विश्वविद्यालय में जाएगा।

सबसे पहले उसे सुरक्षित रखिए।

उसे अपना समय दीजिए।

उसका चरित्र बनाइए।

ईमानदारी सिखाइए।

अनुशासन सिखाइए।

जिम्मेदारी सिखाइए।

झूठ, धोखा और चालाकी से दूर रहना
सिखाइए।

उसे समझाइए कि हर काम का परिणाम
होता है।

और उसे मेहनत का मूल्य समझाइए,
क्योंकि जीवन में कोई भी मूल्यवान चीज़
हवा से पैदा नहीं होती।

जो चीज़ मुफ्त दिखाई देती है, उसकी भी
कहीं न कहीं कोई कीमत होती है।

पहले नींव मजबूत कीजिए।

स्कूल बाद में आएगा।

समय और व्यवस्था

एक बच्चे को जो सबसे उपयोगी हुनर सिखाए जा सकते हैं, उनमें से एक का बुद्धिमत्ता से बहुत कम संबंध है।

वह है — **व्यवस्थित होना।**

यह बात मैंने अपनी बेटी के अनुभव से सीखी।

जब वह छोटी थी, उसका चयन एक गिफ्टेड प्रोग्राम में हुआ। उससे पहले पढ़ाई में वह काफी सहज थी। पुरानी कहावत का इस्तेमाल करूँ तो वह एक छोटे तालाब की बड़ी मछली थी।

फिर अचानक तालाब बदल गया।

अब उसके आसपास ऐसे बच्चे थे जो स्वयं बहुत प्रतिभाशाली थे। वह अब अपने-आप सबसे आगे नहीं थी। अपेक्षाएँ अधिक थीं, काम अधिक था और पहली बार उसे महसूस हुआ कि जहाँ पहले वह सहजता से खड़ी थी, वहाँ बने रहने के लिए भी उसे प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी।

इस दबाव का असर उसके शरीर पर भी दिखाई देने लगा। उसे पेट से जुड़ी तकलीफें और बार-बार अस्वस्थता होने लगी।

मेरे लिए सवाल यह नहीं था कि क्या वह उस पढ़ाई को करने में सक्षम थी।

वह बिल्कुल सक्षम थी।

सवाल यह था:

**क्या उसे यह साबित करने के लिए अपनी
सेहत की कीमत चुकानी चाहिए?**

मेरे लिए इसका उत्तर था — नहीं।

मैंने उससे सबसे पहले कहा कि चाहे जो
हो, हम उसके साथ हैं। यह केवल मिडिल
स्कूल था। जीवन के एक बहुत बड़े सफर
का एक छोटा-सा हिस्सा। कोई एक ग्रेड,
कोई एक प्रोग्राम या कोई एक स्कूल यह
तय नहीं कर सकता कि एक इंसान की
कीमत क्या है।

दूसरी बात मैंने उससे कही कि अपने ऊपर इतना दबाव मत डालो। शिक्षा महत्वपूर्ण है, लेकिन जीवन केवल शिक्षा नहीं है।

फिर भी उस कठिन अनुभव से एक बहुत मूल्यवान चीज़ निकली।

उसने खुद को व्यवस्थित करना सीखा।

उसने फोल्डर और सब-फोल्डर बनाना सीखा। उसने यह तय करना सीखा कि कौन-सा काम अभी करना जरूरी है और कौन-सा बाद में किया जा सकता है। उसने बड़े काम को छोटे-छोटे हिस्सों में बाँटना सीखा।

और सबसे महत्वपूर्ण — उसने अपने समय को व्यवस्थित करना सीखा।

गिफ्टेड प्रोग्राम समाप्त हो गया, लेकिन यह हुनर उसके साथ रह गया।

इसीलिए मेरा मानना है कि मिडिल स्कूल बच्चों को संगठन और समय-प्रबंधन सिखाने का बहुत अच्छा समय है।

हम उन्हें गणित पढ़ाते हैं, विज्ञान पढ़ाते हैं, अंग्रेज़ी और इतिहास पढ़ाते हैं। लेकिन कई बार हम उन्हें उस एक चीज़ का उपयोग करना नहीं सिखाते जिसकी जरूरत इन सभी विषयों को है:

समय।

सोने से पहले एक बच्चे को अगले दिन के बारे में सोचने की आदत होनी चाहिए:

कल मेरी यह क्लास है।

यह असाइनमेंट जमा करना है।

यह काम आज रात पूरा करना जरूरी है।

यह बुधवार तक रुक सकता है।

इसके लिए मुझे बीस मिनट चाहिए।

उसके लिए शायद एक घंटा लगेगा।

कल मैं इतना काम पूरा करना चाहता हूँ।

सुनने में यह बहुत साधारण लगता है।

लेकिन है नहीं।

यहीं से इंसान अपनी जिंदगी को खुद चलाना सीखना शुरू करता है।

शुरुआत में माता-पिता को मदद करनी चाहिए। साथ बैठिए। फोल्डर बनाइए। कैलेंडर तैयार कीजिए। असाइनमेंट लिखिए। बड़े प्रोजेक्ट को छोटे हिस्सों में बाँटिए।

लेकिन धीरे-धीरे माता-पिता को पीछे हटना चाहिए।

उद्देश्य यह नहीं है कि आप जीवन भर अपने बच्चे के निजी सचिव बने रहें।

उद्देश्य यह है कि बच्चा **अपना काम स्वयं संभालना सीखे।**

व्यस्त रहने और व्यवस्थित रहने में भी बहुत अंतर है।

एक विद्यार्थी छह घंटे मेज पर बैठकर बहुत कम काम कर सकता है। दूसरा दो घंटे पूरी एकाग्रता से काम करके यह जान सकता है कि उसे क्या करना है, उसे पूरा कर सकता है और फिर अपनी जिंदगी जी सकता है।

अधिक समय देने का अर्थ हमेशा अधिक सीखना नहीं होता।

व्यवस्थित होने का अर्थ है यह जानना कि **इस समय सबसे जरूरी क्या है।**

प्राथमिकताएँ तय करना।

लक्ष्य बनाना।

यह समझना कि हर चीज़ एक ही समय पर जरूरी नहीं हो सकती।

और सबसे महत्वपूर्ण, बच्चे की जिंदगी में उन चीज़ों के लिए भी जगह छोड़ना जो पढ़ाई जितनी ही जरूरी हैं।

दोस्त जरूरी हैं। खेल जरूरी है। परिवार जरूरी है। नींद जरूरी है। और कभी-कभी बिना कुछ किए बैठे रहना भी जरूरी है।

समय-प्रबंधन का उद्देश्य बच्चे के दिन में तीन घंटे और पढ़ाई ठूँस देना नहीं है।

वास्तव में उद्देश्य लगभग इसका उलटा है।

अच्छा संगठन आपको समय वापस देता है।

जो बच्चा यह बात जल्दी सीख लेता है, वह हाई स्कूल में एक बहुत बड़ी बढ़त के साथ

प्रवेश करता है। बाद में विश्वविद्यालय आता है, नौकरी आती है, परिवार आता है, अपॉइंटमेंट, बिल, जिम्मेदारियाँ और अंततः वयस्क जीवन की सारी जटिलताएँ आती हैं।

विषय बदलते रहते हैं।

हुनर वही रहता है।

इसलिए जब मैं अपनी बेटी के उस गिफ्टेड प्रोग्राम के अनुभव को पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो मुझे नहीं लगता कि उसका सबसे बड़ा लाभ किसी किताब में लिखी हुई कोई बात थी।

उसने खुद को व्यवस्थित करना सीखा।

और शायद वह किसी एक ग्रेड से कहीं अधिक मूल्यवान था।

परीक्षा देना भी एक हुनर है

परीक्षाओं के बारे में एक सच्चाई है जिसे हम अक्सर स्वीकार नहीं करना चाहते।

किसी विषय को जानना और परीक्षा देना जानना — दोनों एक ही चीज़ नहीं हैं।

आदर्श स्थिति में विद्यार्थी के पास दोनों होने चाहिए।

लेकिन दोनों अलग-अलग हुनर हैं।

मैं हमेशा से परीक्षा देने में अच्छा रहा हूँ।
मुझे कोई परीक्षा दे दीजिए और भले ही
मुझे उस विषय की हर छोटी-बड़ी बात न
आती हो, मैं अक्सर समझ सकता हूँ कि
महत्वपूर्ण क्या है, विषय को किस तरह
बनाया गया है और किस तरह के सवाल
पूछे जाने की संभावना है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि मुझे उस विषय
में महारत हासिल है।

इसका अर्थ है कि मैं परीक्षा को समझता
हूँ।

दोनों में फर्क है।

जब मैं किसी किताब को देखता हूँ, तो मुझे केवल कई सौ पन्ने दिखाई नहीं देते जिन्हें बराबर महत्व देकर पढ़ना है।

मैं उसकी संरचना देखता हूँ।

लेखक मुझे क्या समझाना चाहता है?

मूल विचार क्या हैं?

शुरुआत में क्या स्थापित किया गया?

कौन-सी बातें बार-बार सामने आ रही हैं?

अंततः लेखक मुझे कहाँ ले जाना चाहता है?

और अगर मैं परीक्षा बना रहा होता, तो मैं क्या पूछता?

जब आप इस तरह सोचना शुरू करते हैं,
तो किताब जानकारी का पहाड़ नहीं रहती।

वह एक नक्शा बन जाती है।

मान लीजिए कंप्यूटर की कोई बुनियादी
परीक्षा है।

हजार पन्नों की किताब खोलने से पहले
पूछिए:

कंप्यूटर क्या है?

हार्डवेयर क्या है?

सॉफ्टवेयर क्या है?

मुख्य हिस्से एक-दूसरे के साथ कैसे काम
करते हैं?

वे कौन-से मूल सिद्धांत हैं जिन्हें समझो
बिना यह नहीं कहा जा सकता कि किसी
व्यक्ति को कंप्यूटर की बुनियादी समझ
है?

आपने अपने दिमाग में परीक्षा बनानी शुरू
कर दी।

यही टेस्ट-टेकिंग स्किल है।

यह पढ़ाई का विकल्प नहीं है।

यह इस बात को पहचानने की कला है कि
महत्वपूर्ण क्या है।

मैंने ऐसे विद्यार्थियों को देखा है जो घंटों
और घंटों पढ़ते रहते हैं और फिर भी बहुत
कम हासिल कर पाते हैं।

वे आलसी नहीं होते। कई बार तो वे बाकी सब से ज्यादा मेहनत कर रहे होते हैं।

समस्या यह है कि किसी ने उन्हें कभी यह सिखाया ही नहीं कि **परीक्षा के लिए पढ़ा कैसे जाता है।**

वे हर पैराग्राफ को बराबर महत्व देते हैं। छोटी-छोटी बातों में उलझ जाते हैं। किसी एक मामूली विषय को पूरी तरह समझने में इतना समय लगा देते हैं कि मुख्य विषय पीछे छूट जाता है।

और फिर परीक्षा आती है, जहाँ समय स्वयं एक समस्या बन जाता है।

एक अच्छा परीक्षार्थी वह प्रश्न पढ़ता है जो वास्तव में पूछा गया है — वह नहीं जो वह चाहता था कि पूछा जाए।

वह शब्दों पर ध्यान देता है।

वह पहचानता है कि कौन-सी जानकारी जरूरी है।

उसे पता होता है कि कब कोई सवाल जरूरत से ज्यादा समय खा रहा है और उसे आगे बढ़ जाना चाहिए।

वह बाद में वापस आता है।

बहुविकल्पीय प्रश्नों में कई बार सही उत्तर तुरंत जानने जितना ही महत्वपूर्ण यह

पहचानना होता है कि कौन-से उत्तर सही नहीं हो सकते।

और सबसे बढ़कर, वह यह समझता है कि परीक्षा सीमित परिस्थितियों में दी जाती है।

आपके पास अनंत समय नहीं है।

इसलिए समय-प्रबंधन पढ़ाई खत्म होने के बाद समाप्त नहीं होता।

वह आपके साथ परीक्षा कक्ष तक जाता है।

लेकिन इसका दूसरा पहलू भी है।

परीक्षा पास करना और किसी विषय को वास्तव में जानना भी एक ही बात नहीं है।

अपने बच्चों में मैंने यह अंतर बहुत स्पष्ट रूप से देखा।

मेरे एक बेटे का स्वभाव बेहद व्यवस्थित और बारीकी से समझने वाला है। कई बार वह बहुत धीमा लगता है क्योंकि जब तक कोई बात उसकी समझ में पूरी तरह नहीं बैठती, वह उसे छोड़ता नहीं।

लेकिन जब वह किसी चीज़ को जान लेता है, तो वह उसे सचमुच **जानता** है।

उसे आधी रात को उठाकर पूछिए कि कोई चीज़ कैसे काम करती है, तो वह आपको क्रम से समझा सकता है:

पहला कदम।

दूसरा कदम।

तीसरा कदम।

चौथा कदम।

दूसरा व्यक्ति शायद हँसकर कह दे:

“वह परीक्षा तो मैंने कई साल पहले पास कर ली थी। अब मुझे मत पूछो।”

दोनों ने परीक्षा पास की।

लेकिन संभव है कि ज्ञान केवल एक के पास बचा हो।

यह अंतर बहुत महत्वपूर्ण है।

इसलिए विद्यार्थी को यह समझना चाहिए कि परीक्षा की तैयारी **किसलिए** की जा रही है।

कभी-कभी आपका उद्देश्य किसी विशेष परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन करना होता है। इसमें कोई बुराई नहीं है।

उसका प्रारूप समझिए।

अभ्यास प्रश्न कीजिए।

समय को समझिए।

पैटर्न पहचानिए।

यह समझिए कि प्रश्न कैसे बनाए जाते हैं।

ये सभी वास्तविक और उपयोगी हुनर हैं।

लेकिन इन्हें ज्ञान की गहराई समझने की
भूल मत कीजिए।

अच्छे अंक मुझे बताते हैं कि आपने
परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन किया। वे अपने-
आप यह साबित नहीं करते कि आपने
विषय को कितनी गहराई से समझा।

सबसे मजबूत विद्यार्थी अंततः दोनों
सीखता है।

विषय को सीखो।

और परीक्षा देना भी सीखो।

जो काम तीन घंटे में अच्छी तरह हो सकता
है, उसके लिए दस घंटे मत लगाओ।

लेकिन परीक्षा पास करने में इतने चतुर भी मत बन जाओ कि स्कूल से शानदार ग्रेड लेकर निकलो और कुछ समय बाद दिमाग में कुछ बचा ही न हो।

परीक्षा एक बाधा है जिसे पार करना है।

शिक्षा वह है जो बाधा पार करने के बाद भी आपके भीतर रहनी चाहिए।

स्वतंत्रता, जवाबदेही और अपनी पहचान

एक बच्चे को अच्छे स्कूल के लिए तैयार करने का एक हिस्सा ऐसा भी है जिसका स्कूल से लगभग कोई संबंध नहीं है।

वह है उसे अपने पैरों पर खड़ा होना
सिखाना।

मैंने अपने बच्चों को एक बात बहुत स्पष्ट
रूप से सिखाने की कोशिश की —
आत्मनिर्भरता।

मेरी बेटी को केवल इसलिए कम अवसर
नहीं मिलने वाले थे क्योंकि वह लड़की
थी।

जितना सहयोग मैं अपने बेटों को दे सकता
था, उतना ही उसे भी मिलता। और यदि
समान आत्मनिर्भरता तक पहुँचने के लिए
उसे अधिक सहयोग की आवश्यकता
होती, तो मैं वह भी देता।

मैं चाहता था कि एक दिन वह अपना जीवनसाथी इसलिए चुने क्योंकि वह उस व्यक्ति के साथ जीवन बिताना चाहती है — इसलिए नहीं कि उसे अपना जीवन चलाने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता है।

मेरे लिए इस अंतर का बहुत महत्व था।

मैं ऐसे सांस्कृतिक वातावरण में बड़ा हुआ जहाँ बेटे और बेटियों को हमेशा बराबर नहीं समझा जाता था। ऐसी सोच महिलाओं पर बहुत भारी दबाव डाल सकती है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी केवल इसलिए चलती रहती है क्योंकि कोई

रुककर यह नहीं पूछता कि यह सही भी है या नहीं।

मैं अपने बच्चों के लिए कुछ अलग चाहता था।

उनके लिए मेरी एक इच्छा को शायद हाथ की मुद्रा से समझाया जा सकता है:

ईश्वर करे तुम्हारा हाथ कभी इस तरह न फैले कि तुम्हें किसी से अपना जीवन चलाने के लिए माँगना पड़े। तुम्हें इतना मिले कि जब तुम्हारा हाथ फैले, तो किसी की सहायता करने या उसे आशीर्वाद देने के लिए फैले।

इसका अर्थ धन के पीछे भागना नहीं है।

बल्कि मैंने उन्हें लगभग इसका उलटा
सिखाया।

पैसे के पीछे अपनी जिंदगी मत लगा दो।

काबिल बनो।

सीखो।

मेहनत करो।

कुछ बनाओ।

अपना आचरण ठीक रखो।

पैसा आवश्यक है, लेकिन उसे अपनी
कीमत का पैमाना मत बनने दो।

आत्मनिर्भरता के साथ ईमानदारी भी
आवश्यक है।

मेरे बच्चों के लिए मेरा एक नियम बिल्कुल स्पष्ट था:

मुझे सच बता दो, मैं तुम्हारे साथ खड़ा रहूँगा।

हो सकता है तुमसे गलती हुई हो।

हो सकता है तुमने कोई मूर्खता की हो।

हो सकता है तुम्हें उसके परिणाम से डर लग रहा हो।

घर आओ।

मुझे बताओ।

हम मिलकर उसका सामना करेंगे।

लेकिन मैं पहली झूठी बात से बचना
चाहता था, क्योंकि एक झूठ को बचाने के
लिए अक्सर दूसरा झूठ बोलना पड़ता है।
फिर तीसरा।

और धीरे-धीरे असली गलती से बड़ी
समस्या उसके चारों ओर खड़ा किया गया
झूठ बन जाता है।

प्यार का अर्थ यह नहीं है कि कोई परिणाम
नहीं होंगे।

प्यार का अर्थ यह भी नहीं है:

“जो मन करे करो।”

कई बार प्यार का अर्थ होता है:

**मैं तुम्हारे साथ हूँ। लेकिन तुम फिर भी
अपने काम के लिए जवाबदेह हो।**

जब बच्चे छोटे होते हैं, तो वे कुछ हद तक
अपने परिवार का प्रतिनिधित्व भी करते हैं।

मैं अपने बच्चों से कहता था कि जब तुम
बाहर जाते हो, तो तुम मेरे राजदूत हो।

इसका उद्देश्य यह नहीं था कि वे इस डर में
रहें कि कहीं पिता को शर्मिंदा न कर दें।

अर्थ यह था:

याद रखो, तुम्हारे व्यवहार का प्रभाव केवल
तुम पर नहीं पड़ता।

अपने आपको इस तरह प्रस्तुत करो कि
तुम्हारे परिवार को तुम पर गर्व हो सके।

लेकिन अंततः यह पहचान भी पीछे छूट
जानी चाहिए।

शुरुआत में कोई कह सकता है:

“यह डॉ. गुलाटी की बेटी है।”

“यह डॉ. गुलाटी का बेटा है।”

ठीक है।

लेकिन मैं नहीं चाहता था कि उनकी कहानी
वहीं समाप्त हो।

एक दिन मैं चाहता था कि लोग **उनका**
अपना नाम लें और जानें कि उन्होंने स्वयं
क्या किया है।

यही बात वंश और परिवार की प्रतिष्ठा पर भी लागू होती है।

अपने परिवार पर गर्व करो।

अपनी विरासत पर गर्व करो।

अपनी संस्कृति पर गर्व करो।

लेकिन उधार की प्रतिष्ठा पर जीवन मत बिताओ।

आपके दादा कौन थे, यह आपके इतिहास का एक रोचक हिस्सा हो सकता है।

लेकिन वह आपकी उपलब्धि नहीं है।

आपके पिता कौन थे, वह भी आपकी उपलब्धि नहीं है।

अपने पैरों पर खड़े हो। अपने दादा के पैरों पर नहीं।

प्रवासी परिवारों के लिए एक और संतुलन मुझे बहुत महत्वपूर्ण लगता है।

मेरे बच्चे अपनी भारतीय और सिख विरासत का सम्मान कर सकते थे, बिना उस देश को कम अपना समझे जिसमें वे पैदा हुए और बड़े हुए।

एक पहचान का सम्मान करने के लिए दूसरी पहचान मिटाने की आवश्यकता नहीं है।

मेरे लिए बहुसांस्कृतिक समाज की यही खूबसूरती है।

आप अपनी विरासत को अपने साथ रख सकते हैं, लेकिन उसके कैदी बनने की जरूरत नहीं है।

जो अच्छा है, उसे संभालकर रखो।

यह जानो कि तुम कहाँ से आए हो।

लेकिन जहाँ हो, वहाँ **अपनी जिंदगी स्वयं बनाओ।**

और यहीं बात फिर शिक्षा पर लौट आती है।

जब मैं कहता हूँ कि अत्यंत प्रतिस्पर्धी स्कूल में आवेदन करने वाले विद्यार्थी को एक **समग्र व्यक्तित्व** होना चाहिए, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि उसके आवेदन में

दिखाने के लिए गतिविधियों की लंबी सूची
तैयार कर दी जाए।

मेरा मतलब उससे कहीं अधिक गहरा है।

क्या यह बच्चा खुद को व्यवस्थित कर
सकता है?

क्या वह अपनी बात स्पष्ट रूप से कह
सकता है?

क्या वह सोच सकता है?

क्या वह किसी विचार पर बहस कर
सकता है?

क्या वह लिख सकता है?

क्या वह जिम्मेदारी स्वीकार कर सकता है?

क्या वह तब सच बोल सकता है जब सच बोलना मुश्किल हो?

क्या वह हार को सह सकता है?

क्या वह सफलता मिलने पर स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझने से बच सकता है?

क्या वह अपनी विरासत का सम्मान कर सकता है, बिना किसी और की उपलब्धियों पर जीवन बिताए?

और अंततः:

क्या वह अपनी ऐसी पहचान बना सकता है जो सचमुच उसकी अपनी हो?

उत्कृष्ट ग्रेड वाले सैकड़ों विद्यार्थी हो सकते हैं।

बहुत अच्छे परीक्षा परिणाम वाले भी
सैकड़ों हो सकते हैं।

इसीलिए मेरे लिए अच्छे स्कूल में प्रवेश का
अर्थ कभी केवल एक और परफेक्ट
अकादमिक रिकॉर्ड तैयार करना नहीं था।

असल काम उससे बहुत पहले शुरू होता
है।

आप एक इंसान बना रहे हैं।

और अगर आपने उस इंसान की नींव अच्छी
रखी है, तो एक दिन उसका रिज़्यूमे स्वयं
उसकी कहानी कहने लगता है।

